IOSR Journal of Humanities and Social Science (IOSR-JHSS)
Volume 30, Issue 8, Series 1 (August, 2025) 128-145
e-ISSN: 2279-0837, p-ISSN: 2279-0845.
www.iosrjournals.org

महाभारत : ज्ञान का समुज्ज्वल रत्न — एक विहंगम अवलोकन

डॉ. पुष्पेन्द्र कुमार
एसोसिएट प्रोफेसर, राजकीय महाविद्यालय सलारपुर गढ़मुक्तेश्वर हापुड़ उ०प्र०

सारांश

महाभारत भारतीय ज्ञान-परंपरा का एक ऐसा महान महाकाव्य है, जिसमें मानव जीवन के सभी आयामों का अत्यंत व्यापक, गहन और दार्शनिक विवेचन मिलता है। यह केवल कौरवों और पाण्डवों के मध्य हुए युद्ध का आख्यान नहीं, बल्कि धर्म, न्याय, राजनीति, समाज, शिक्षा, नारी-अस्मिता, आध्यात्मिकता तथा नैतिक जीवन का विश्वकोश है। महर्षि वेदव्यास द्वारा रचित यह ग्रंथ भारतीय संस्कृति, दर्शन और नैतिक मूल्यों का आधारस्तंभ माना जाता है। महाभारत का केंद्रीय उद्देश्य धर्म की स्थापना और अधर्म का विनाश है। इसमें वर्णित कुरुक्षेत्र युद्ध मनुष्य के भीतर चलने वाले नैतिक संघर्ष का प्रतीक है। इस अध्ययन में महाभारत के दार्शनिक, सामाजिक, राजनीतिक तथा सांस्कृतिक पक्षों का विस्तृत विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। विशेष रूप से श्रीमद्भगवद्गीता के कर्मयोग, आत्मा के दर्शन और समत्व के सिद्धांतों का विवेचन किया गया है। साथ ही युधिष्ठिर, भीष्म, कर्ण, द्रौपदी, कुंती और गांधारी जैसे प्रमुख पात्रों के माध्यम से मानव जीवन के नैतिक और मनोवैज्ञानिक आयामों को समझने का प्रयास किया गया है। महाभारत में राजनीति और राज्यशास्त्र का स्वरूप भी अत्यंत विकसित दिखाई देता है। विदुर नीति और भीष्म द्वारा प्रतिपादित राजधर्म आधुनिक शासन व्यवस्था और लोकतांत्रिक मूल्यों के लिए भी अत्यंत प्रासंगिक हैं। इसके अतिरिक्त शिक्षा और गुरु-शिष्य परंपरा, विशेषकर द्रोणाचार्य, अर्जुन और एकलव्य के प्रसंगों के माध्यम से सामाजिक न्याय, शिक्षा के अधिकार तथा जातिगत असमानताओं पर भी प्रकाश डाला गया है। महाभारत का स्त्री विमर्श विशेष रूप से उल्लेखनीय है। द्रौपदी, कुंती और गांधारी जैसी स्त्रियाँ केवल सहायक पात्र नहीं, बल्कि सामाजिक और नैतिक चेतना की प्रतीक हैं। उनका संघर्ष नारी सम्मान, आत्मबल और न्याय की आवश्यकता को उजागर करता है। इस प्रकार महाभारत केवल प्राचीन भारत का इतिहास नहीं, बल्कि सम्पूर्ण मानवता के लिए नैतिक, सामाजिक और आध्यात्मिक मार्गदर्शन प्रदान करने वाला कालजयी ग्रंथ है।

मुख्य शब्द : *महाभारत, धर्म, श्रीमद्भगवद्गीता, कर्मयोग, राजधर्म, विदुर नीति, गुरु-शिष्य परंपरा, नारी विमर्श, द्रौपदी, भारतीय दर्शन, कुरुक्षेत्र*

1. प्रस्तावना

महाभारत भारतीय ज्ञान-परंपरा का वह अमूल्य ग्रंथ है, जिसने सहस्राब्दियों से मानव समाज को धर्म, नीति, सत्य, न्याय और जीवन-दर्शन का मार्ग दिखाया है। यह केवल एक ऐतिहासिक आख्यान या युद्ध कथा नहीं है, बल्कि सम्पूर्ण मानव जीवन का दर्पण है। भारतीय संस्कृति, सभ्यता, दर्शन, राजनीति, आध्यात्मिकता तथा सामाजिक संरचना को समझने के लिए महाभारत का अध्ययन अत्यंत आवश्यक माना जाता है। महर्षि वेदव्यास द्वारा रचित यह महाकाव्य लगभग एक लाख श्लोकों में विस्तृत है और इसे विश्व का सबसे विशाल महाकाव्य माना जाता है। इसकी व्यापकता और गहनता के कारण इसे "पंचम वेद" की संज्ञा भी दी गई है। भारतीय परंपरा में महाभारत की महत्ता को व्यक्त करते हुए प्रसिद्ध उक्ति कही गई है—"यदिहास्ति तदन्यत्र, यन्नेहास्ति न तत्क्वचित्।" अर्थात् जो कुछ महाभारत में है, वह अन्यत्र भी विद्यमान है और जो इसमें नहीं है, वह कहीं भी उपलब्ध नहीं है। यह कथन इस ग्रंथ की सर्वसमावेशी प्रकृति को स्पष्ट करता है। वास्तव में महाभारत केवल राजवंशों के संघर्ष का इतिहास नहीं, बल्कि मानव जीवन के प्रत्येक आयाम का गहन विश्लेषण है।

महाभारत में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष — इन चार पुरुषार्थों का अत्यंत सूक्ष्म विवेचन किया गया है। इसमें धर्म और अधर्म के संघर्ष को केवल बाह्य युद्ध के रूप में नहीं, बल्कि मानव मन के आंतरिक द्वंद्व के रूप में भी प्रस्तुत किया गया है।

कुरुक्षेत्र का युद्ध वस्तुतः मनुष्य के भीतर चलने वाले सत्य और असत्य, विवेक और मोह, न्याय और अन्याय के संघर्ष का प्रतीक है। यही कारण है कि महाभारत आज भी उतना ही प्रासंगिक है जितना प्राचीन काल में था। महाभारत का सबसे महत्वपूर्ण पक्ष इसका दार्शनिक और नैतिक स्वरूप है। इसमें यह स्पष्ट किया गया है कि मनुष्य का जीवन केवल भौतिक सुखों की प्राप्ति तक सीमित नहीं है, बल्कि उसका अंतिम उद्देश्य आत्मज्ञान और मोक्ष की प्राप्ति है। इस संदर्भ में श्रीमद्भगवद्गीता का यह श्लोक अत्यंत महत्वपूर्ण है—

"कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि॥"

यह श्लोक मानव को निस्वार्थ कर्म, कर्तव्यनिष्ठा और आत्मसंयम का संदेश देता है। गीता का यह उपदेश केवल आध्यात्मिक नहीं, बल्कि व्यावहारिक जीवन में भी अत्यंत उपयोगी है। महाभारत में मानव जीवन के प्रत्येक पक्ष का अत्यंत गहन चित्रण मिलता है। इसमें राजनीति, राज्यव्यवस्था, युद्धनीति, शिक्षा, पारिवारिक संबंध, स्त्री की स्थिति, सामाजिक न्याय, गुरु-शिष्य परंपरा, त्याग, प्रेम, करुणा तथा नैतिकता का अत्यंत सूक्ष्म विश्लेषण किया गया है। यही कारण है कि इसे केवल धार्मिक ग्रंथ न मानकर "जीवन-दर्शन" का विश्वकोश कहा जाता है। महाभारत का एक प्रमुख उद्देश्य धर्म की स्थापना है। जब समाज में अन्याय, अधर्म और अहंकार बढ़ जाता है, तब विनाश अवश्यंभावी हो जाता है। इसी सत्य को व्यक्त करते हुए भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं—

"यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥"

यह श्लोक केवल धार्मिक आस्था का प्रतीक नहीं, बल्कि सामाजिक न्याय और नैतिक पुनर्स्थापना का संदेश भी देता है। श्रीकृष्ण का सम्पूर्ण जीवन धर्म की स्थापना और अधर्म के विनाश के लिए समर्पित रहा। महाभारत में वर्णित पात्र केवल ऐतिहासिक चरित्र नहीं हैं, बल्कि मानव स्वभाव के विविध आयामों के प्रतीक हैं। युधिष्ठिर सत्य और धर्म के प्रतीक हैं, भीष्म त्याग और कर्तव्यनिष्ठा के, कर्ण दान और आत्मसंघर्ष के, जबकि दुर्योधन अहंकार और ईर्ष्या के प्रतीक हैं। इन पात्रों के माध्यम से महाभारत मानव मनोविज्ञान का अद्भुत विश्लेषण प्रस्तुत करता है।दुर्योधन का यह प्रसिद्ध कथन मानव की मानसिक दुर्बलता को अत्यंत प्रभावशाली रूप में व्यक्त करता है—

"जानामि धर्मं न च मे प्रवृत्तिः।
जानाम्यधर्मं न च मे निवृत्तिः॥"

अर्थात् मैं धर्म को जानता हूँ, पर उसमें प्रवृत्त नहीं हो पाता; अधर्म को जानता हूँ, पर उससे हट नहीं पाता। यह श्लोक आज के मानव समाज की स्थिति पर भी पूर्णतः लागू होता है। महाभारत केवल युद्ध और राजनीति का ग्रंथ नहीं है, बल्कि यह करुणा, प्रेम और मानवीय मूल्यों का भी महाग्रंथ है। इसमें अहिंसा, सत्य, दया और परोपकार को सर्वोच्च मूल्य माना गया है। भीष्म पितामह शान्ति पर्व में कहते हैं— "अहिंसा परमो धर्मः।" यह शिक्षा आधुनिक विश्व में शांति और मानवता की आवश्यकता को रेखांकित करती है। महाभारत में ज्ञान और शिक्षा को अत्यंत महत्त्व दिया गया है। गुरु-शिष्य परंपरा भारतीय संस्कृति की आधारशिला रही है। द्रोणाचार्य, कृपाचार्य और व्यास जैसे महापुरुष ज्ञान के प्रतीक हैं। वहीं एकलव्य का प्रसंग यह दर्शाता है कि ज्ञान प्राप्ति के लिए समर्पण और साधना कितनी आवश्यक है। इस प्रकार महाभारत केवल आदर्शों का वर्णन नहीं करता, बल्कि सामाजिक प्रश्नों और असमानताओं को भी उजागर करता है। महाभारत का दार्शनिक पक्ष अत्यंत व्यापक है। इसमें आत्मा की अमरता, कर्म का सिद्धांत, समय का प्रभाव तथा जीवन की अनित्यता का गहन विवेचन मिलता है। गीता में कहा गया है—

"न जायते म्रियते वा कदाचित्
नायं भूत्वा भविता वा न भूयः।"

अर्थात् आत्मा न जन्म लेती है और न कभी मरती है। यह शिक्षा मानव को मृत्यु के भय से मुक्त कर आत्मिक शांति प्रदान करती है। महाभारत भारतीय संस्कृति का ऐसा दिव्य ग्रंथ है, जो केवल अतीत का इतिहास नहीं, बल्कि वर्तमान और भविष्य का भी मार्गदर्शक है। आज के युग में जब समाज नैतिक संकट, हिंसा, स्वार्थ, राजनीतिक भ्रष्टाचार और पारिवारिक विघटन जैसी समस्याओं से जूझ रहा है, तब महाभारत की शिक्षाएँ और भी अधिक प्रासंगिक हो जाती हैं। यह ग्रंथ हमें सिखाता है कि सत्य, धर्म, करुणा और आत्मसंयम ही मानव जीवन की वास्तविक शक्तियाँ हैं।

अतः महाभारत वास्तव में ज्ञान का समुज्ज्वल रत्न है। यह केवल भारतीय सभ्यता की धरोहर नहीं, बल्कि सम्पूर्ण मानवता के लिए प्रेरणा का स्रोत है। इसकी शिक्षाएँ कालातीत हैं और सदैव मानव जीवन को प्रकाशमान करती रहेंगी।

2. महाभारत की रचना और स्वरूप

महाभारत भारतीय साहित्य, संस्कृति और दर्शन का ऐसा विराट ग्रंथ है, जिसकी रचना और संरचना अपने आप में अद्वितीय मानी जाती है। यह केवल एक धार्मिक या साहित्यिक ग्रंथ नहीं, बल्कि भारतीय ज्ञान-परंपरा का विशाल भंडार है। महाभारत के रचयिता महर्षि वेदव्यास माने जाते हैं, जिन्हें भारतीय परंपरा में महान ऋषि, दार्शनिक और वेदों के संकलनकर्ता के रूप में अत्यंत सम्मान प्राप्त है। वेदव्यास ने न केवल महाभारत की रचना की, बल्कि भारतीय आध्यात्मिक और सांस्कृतिक चेतना को भी स्थायी आधार प्रदान किया। भारतीय परंपरा के अनुसार महर्षि वेदव्यास ने इस महाकाव्य की रचना दिव्य प्रेरणा से की थी। जब उन्होंने महाभारत जैसे विशाल ग्रंथ की रचना का संकल्प लिया, तब उन्हें यह चिंता हुई कि इतने विस्तृत ग्रंथ को लिखेगा कौन। तब उन्होंने भगवान गणेश का स्मरण किया। गणेशजी ने इस शर्त पर लेखन स्वीकार किया कि वेदव्यास बिना रुके श्लोक बोलते रहेंगे। इसके उत्तर में वेदव्यास ने भी यह शर्त रखी कि गणेशजी प्रत्येक श्लोक का अर्थ समझकर ही उसे लिखेंगे। यह कथा भारतीय ज्ञान-परंपरा में गुरु और शिष्य, ज्ञान और बुद्धि, तथा वाणी और लेखन के अद्भुत समन्वय का प्रतीक मानी जाती है। इस प्रसंग को स्मरण करते हुए परंपरा में कहा जाता है—

"व्यासं वसिष्ठनप्तारं शक्तेः पौत्रमकल्मषम्।
पराशरात्मजं वन्दे शुकतातं तपोनिधिम्॥"

यह श्लोक महर्षि वेदव्यास की महानता और तपस्वी स्वरूप को व्यक्त करता है। वे केवल कवि नहीं, बल्कि भारतीय संस्कृति के महान द्रष्टा थे। महाभारत की रचना क्रमिक रूप से विकसित हुई। प्रारंभ में यह ग्रंथ "जय" नाम से प्रसिद्ध था। इसमें लगभग 8,800 श्लोक थे और इसका मुख्य विषय कुरुक्षेत्र युद्ध तथा धर्म की विजय था। "जय" का अर्थ ही विजय है, जो सत्य और धर्म की विजय का प्रतीक है। बाद में यह ग्रंथ "भारत" नाम से विस्तृत हुआ, जिसमें लगभग 24,000 श्लोक सम्मिलित किए गए। इसमें भरतवंश के इतिहास, राजपरंपरा तथा अनेक नैतिक और दार्शनिक प्रसंगों को जोड़ा गया। अंततः यह "महाभारत" के रूप में विकसित हुआ, जिसमें लगभग एक लाख श्लोकों का विशाल संग्रह है। इसी कारण इसे विश्व का सबसे बड़ा महाकाव्य माना जाता है। महाभारत की विशालता को व्यक्त करते हुए कहा गया है— "महत्त्वाद् भारवत्त्वाच्च महाभारतमुच्यते।" अर्थात् अपने महान महत्व और विशाल स्वरूप के कारण इसे "महाभारत" कहा जाता है। महाभारत केवल कथा साहित्य नहीं है, बल्कि इसमें इतिहास, धर्म, राजनीति, समाजशास्त्र, दर्शन, मनोविज्ञान, नीति और अध्यात्म का अद्भुत समन्वय मिलता है। यही कारण है कि इसे "पंचम वेद" की उपाधि दी गई है। भारतीय परंपरा में यह माना जाता है कि वेदों का सार महाभारत में समाहित है। महाभारत का स्वरूप अत्यंत व्यापक और बहुआयामी है। इसमें अठारह पर्व हैं, जिनमें मानव जीवन के विविध आयामों का विस्तृत वर्णन मिलता है। प्रत्येक पर्व अपने आप में एक स्वतंत्र ग्रंथ जैसा प्रतीत होता है।

महाभारत के प्रमुख पर्व-

1. आदिपर्व- इस पर्व में कुरुवंश की उत्पत्ति, पाण्डवों और कौरवों का जन्म, भीष्म की प्रतिज्ञा, द्रोणाचार्य की शिक्षा तथा प्रारंभिक घटनाओं का वर्णन मिलता है। यह महाभारत की भूमिका के समान है।

2. सभापर्व- इस पर्व में युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ, दुर्योधन की ईर्ष्या तथा द्यूत-क्रीड़ा का वर्णन है। द्रौपदी चीरहरण का अत्यंत मार्मिक प्रसंग भी इसी पर्व में आता है।

3. वनपर्व- इसमें पाण्डवों के वनवास, तपस्या, तीर्थयात्रा तथा अनेक नैतिक कथाओं का वर्णन किया गया है। यह पर्व त्याग, धैर्य और संघर्ष का संदेश देता है।

4. भीष्मपर्व- यह पर्व कुरुक्षेत्र युद्ध के आरंभ और श्रीमद्भगवद्गीता के दिव्य उपदेश के लिए प्रसिद्ध है। इसी पर्व में श्रीकृष्ण अर्जुन को कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोग का उपदेश देते हैं। "कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।" यह श्लोक गीता के कर्मयोग दर्शन का मूल आधार है।

5. द्रोणपर्व- इस पर्व में आचार्य द्रोण के सेनापतित्व तथा युद्ध की भीषणता का वर्णन मिलता है। अभिमन्यु वध का अत्यंत करुण प्रसंग भी इसी में वर्णित है।

6. शान्तिपर्व- यह महाभारत का सबसे दार्शनिक और नीति प्रधान पर्व माना जाता है। युद्ध समाप्ति के बाद भीष्म युधिष्ठिर को राजधर्म, मोक्षधर्म और नीति का उपदेश देते हैं। इस पर्व में कहा गया है— "अहिंसा परमो धर्मः।" यह शिक्षा मानवता और शांति का सर्वोच्च संदेश देती है।

7. अनुशासनपर्व- इसमें दान, धर्म, सदाचार और सामाजिक कर्तव्यों की विस्तृत व्याख्या की गई है। यह पर्व नैतिक जीवन के लिए मार्गदर्शक माना जाता है।

8. स्वर्गारोहणपर्व- यह महाभारत का अंतिम पर्व है, जिसमें पाण्डवों की अंतिम यात्रा और स्वर्गारोहण का वर्णन मिलता है। यह जीवन की अनित्यता और मोक्ष की भावना को प्रकट करता है।

महाभारत के इन अठारह पर्वों में केवल राजवंशों का इतिहास नहीं, बल्कि मानव जीवन के समस्त संघर्षों और अनुभवों का चित्रण है। इसमें प्रेम और घृणा, सत्य और असत्य, धर्म और अधर्म, त्याग और लोभ, करुणा और क्रोध — सभी मानवीय भावनाओं का अत्यंत यथार्थ चित्रण मिलता है। महाभारत का स्वरूप केवल साहित्यिक नहीं, बल्कि दार्शनिक और आध्यात्मिक भी है। इसमें वेद, उपनिषद और पुराणों की शिक्षाओं का समन्वय दिखाई देता है। गीता में आत्मा की अमरता का वर्णन करते हुए कहा गया है—

"न जायते म्रियते वा कदाचित्
नायं भूत्वा भविता वा न भूयः।"

यह श्लोक महाभारत के आध्यात्मिक स्वरूप को स्पष्ट करता है। महाभारत में कथा और दर्शन का अद्भुत संतुलन मिलता है। एक ओर इसमें युद्ध, राजनीति और कूटनीति का यथार्थ चित्रण है, तो दूसरी ओर आत्मा, मोक्ष और धर्म का गहन विवेचन भी है। यही कारण है कि यह ग्रंथ केवल प्राचीन भारत का इतिहास नहीं, बल्कि सम्पूर्ण मानवता का नैतिक और आध्यात्मिक मार्गदर्शक बन गया। महाभारत की रचना और स्वरूप भारतीय संस्कृति की विशालता और गहराई को प्रकट करते हैं। यह ग्रंथ आज भी उतना ही प्रासंगिक है जितना हजारों वर्ष पूर्व था। इसकी शिक्षाएँ मानव जीवन को सत्य, धर्म, न्याय और आत्मज्ञान की ओर प्रेरित करती हैं। अतः महाभारत केवल एक महाकाव्य नहीं, बल्कि भारतीय ज्ञान-संस्कृति का अमर प्रकाश स्तंभ है।

3. महाभारत का केंद्रीय उद्देश्य : धर्म की स्थापना

महाभारत का केंद्रीय उद्देश्य केवल कौरवों और पाण्डवों के मध्य युद्ध का वर्णन करना नहीं है, बल्कि धर्म की स्थापना तथा अधर्म के विनाश के शाश्वत सिद्धांत को स्पष्ट करना है। महाभारत मानव जीवन के उस गहन सत्य को उद्घाटित करता है कि जब समाज में अन्याय, अहंकार, लोभ, अत्याचार और अधर्म की वृद्धि होने लगती है, तब विनाश अवश्यंभावी हो जाता है। यह महाकाव्य केवल ऐतिहासिक संघर्ष का आख्यान नहीं, बल्कि नैतिक चेतना और धर्म के पुनर्स्थापन का दिव्य

संदेश है। महाभारत में धर्म को जीवन का आधार माना गया है। धर्म वह शक्ति है जो समाज को संतुलन, न्याय और नैतिकता प्रदान करती है। जब धर्म कमजोर पड़ता है और अधर्म समाज पर हावी हो जाता है, तब सामाजिक व्यवस्था टूटने लगती है। कुरुक्षेत्र का युद्ध इसी नैतिक पतन का परिणाम था। दुर्योधन का अहंकार, शकुनि की कूटनीति, धृतराष्ट्र का मोह और सभा में मौन बैठे विद्वानों की निष्क्रियता — ये सभी अधर्म के ऐसे रूप थे जिन्होंने अंततः सम्पूर्ण कुरुवंश को विनाश की ओर धकेल दिया। इसी सत्य को स्पष्ट करते हुए श्रीकृष्ण श्रीमद्भगवद्गीता में कहते हैं—

"यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे॥"

अर्थात् जब-जब धर्म की हानि और अधर्म की वृद्धि होती है, तब-तब मैं अवतार लेकर सज्जनों की रक्षा, दुष्टों के विनाश और धर्म की पुनः स्थापना करता हूँ। यह श्लोक महाभारत के मूल दर्शन और उद्देश्य को स्पष्ट करता है। श्रीकृष्ण का सम्पूर्ण जीवन धर्म की रक्षा और न्याय की स्थापना के लिए समर्पित था। महाभारत में धर्म को किसी संकीर्ण धार्मिक नियम या कर्मकाण्ड तक सीमित नहीं रखा गया है। यहाँ धर्म का अर्थ है — सत्य, न्याय, कर्तव्य, करुणा, विवेक और लोककल्याण। धर्म वह है जो समाज और मानवता के हित में हो। यही कारण है कि महाभारत में धर्म की व्याख्या अत्यंत सूक्ष्म और जटिल रूप में की गई है। कई बार ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न होती हैं जहाँ सही और गलत का निर्णय करना अत्यंत कठिन हो जाता है। महाभारत यह स्पष्ट करता है कि धर्म कोई स्थिर और कठोर नियम नहीं है, बल्कि परिस्थितियों के अनुसार न्यायपूर्ण निर्णय लेने की क्षमता है। यही कारण है कि युधिष्ठिर जैसे धर्मराज भी कई बार धर्मसंकट में पड़ जाते हैं। भीष्म, द्रोण और कर्ण जैसे महान पात्र भी धर्म और कर्तव्य के बीच संघर्ष करते दिखाई देते हैं। इस प्रकार महाभारत मानव जीवन की नैतिक जटिलताओं को अत्यंत यथार्थ रूप में प्रस्तुत करता है।

महाभारत में कहा गया है— "धर्मो रक्षति रक्षितः।" अर्थात् जो धर्म की रक्षा करता है, धर्म उसकी रक्षा करता है। यह शिक्षा भारतीय संस्कृति का मूल आधार बन चुकी है। धर्म केवल पूजा-पाठ नहीं, बल्कि नैतिक जीवन जीने की प्रक्रिया है। कुरुक्षेत्र का युद्ध वस्तुतः धर्म और अधर्म के मध्य संघर्ष था। पाण्डवों ने अनेक कष्ट सहन किए, वनवास भोगा, अपमान झेला, परंतु धर्म का मार्ग नहीं छोड़ा। दूसरी ओर कौरवों ने सत्ता और अहंकार के कारण अन्याय का मार्ग अपनाया। अंततः विजय पाण्डवों की हुई, जिससे यह सिद्ध हुआ कि सत्य और धर्म की विजय निश्चित है।

युधिष्ठिर का चरित्र धर्म की स्थापना का सर्वोत्तम उदाहरण है। वे सदैव सत्य और न्याय का पालन करते हैं। कठिन परिस्थितियों में भी उन्होंने धर्म का मार्ग नहीं छोड़ा। उनका जीवन यह शिक्षा देता है कि धर्म का पालन करना आसान नहीं होता, परंतु वही अंततः मानव को सम्मान और विजय दिलाता है। महाभारत में धर्म के सूक्ष्म स्वरूप को समझाने के लिए अनेक प्रसंग प्रस्तुत किए गए हैं। द्रौपदी चीरहरण का प्रसंग केवल एक स्त्री के अपमान का वर्णन नहीं, बल्कि उस समाज की नैतिक विफलता का प्रतीक है जहाँ शक्तिशाली लोग अन्याय के सामने मौन रहते हैं। सभा में भीष्म, द्रोण और विदुर जैसे विद्वान उपस्थित थे, फिर भी द्रौपदी को न्याय नहीं मिला। यह घटना यह स्पष्ट करती है कि केवल ज्ञान पर्याप्त नहीं, बल्कि अन्याय के विरुद्ध साहसपूर्वक खड़ा होना भी धर्म है।

द्रौपदी का प्रश्न आज भी मानवता को झकझोरता है कि यदि सभा में धर्म मौन हो जाए, तो न्याय की रक्षा कौन करेगा? इस प्रसंग से यह शिक्षा मिलती है कि अधर्म का समर्थन केवल अन्याय करना ही नहीं, बल्कि अन्याय को देखकर मौन रहना भी है। महाभारत में श्रीकृष्ण धर्म के सर्वोच्च मार्गदर्शक के रूप में उपस्थित होते हैं। वे केवल युद्ध के संचालक नहीं, बल्कि जीवन-दर्शन के महान व्याख्याता हैं। अर्जुन जब युद्धभूमि में मोह और करुणा से व्याकुल होकर अपने कर्तव्य से विमुख होने लगते हैं, तब श्रीकृष्ण उन्हें कर्मयोग और धर्म का उपदेश देते हैं—

"कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि॥"

यह श्लोक धर्म और कर्म के संबंध को स्पष्ट करता है। मनुष्य का कर्तव्य है कि वह धर्मपूर्वक कर्म करे, फल की चिंता न करे। महाभारत यह भी सिखाता है कि अधर्म चाहे कितना ही शक्तिशाली क्यों न दिखाई दे, उसका अंत निश्चित है। दुर्योधन के पास विशाल सेना, सत्ता और सामर्थ्य था, परंतु उसमें धर्म नहीं था। दूसरी ओर पाण्डवों के पास केवल सत्य और श्रीकृष्ण का मार्गदर्शन था। अंततः विजय धर्म की हुई। महाभारत में धर्म का एक महत्वपूर्ण पक्ष करुणा और अहिंसा भी है। भीष्म पितामह शान्तिपर्व में कहते हैं—"अहिंसा परमो धर्मः।" अर्थात् अहिंसा ही परम धर्म है। यह शिक्षा मानवता, दया और सह-अस्तित्व की भावना को प्रकट करती है। यद्यपि महाभारत में युद्ध का वर्णन है, परंतु उसका उद्देश्य युद्ध का महिमामंडन करना नहीं, बल्कि यह दिखाना है कि अधर्म और अहंकार अंततः विनाश को जन्म देते हैं।

महाभारत का धर्म केवल व्यक्तिगत आचरण तक सीमित नहीं है, बल्कि सामाजिक और राजनीतिक जीवन से भी जुड़ा हुआ है। राजा का धर्म प्रजा की रक्षा करना है, गुरु का धर्म ज्ञान देना है, पुत्र का धर्म माता-पिता का सम्मान करना है और मनुष्य का धर्म सत्य तथा न्याय का पालन करना है। इस प्रकार महाभारत सम्पूर्ण समाज को नैतिकता और कर्तव्य का संदेश देता है। महाभारत में धर्म की स्थापना का अंतिम उद्देश्य मानवता का कल्याण है। यह ग्रंथ हमें सिखाता है कि धर्म का मार्ग कठिन अवश्य हो सकता है, परंतु वही मानव जीवन को सार्थक बनाता है। सत्य, न्याय, करुणा, आत्मसंयम और कर्तव्यनिष्ठा ही वास्तविक धर्म हैं। अतः महाभारत का केंद्रीय उद्देश्य धर्म की स्थापना और अधर्म का विनाश है। यह केवल प्राचीन भारत का इतिहास नहीं, बल्कि सम्पूर्ण मानवता के लिए नैतिक चेतना का अमर संदेश है। आज के युग में जब समाज नैतिक संकट, हिंसा, स्वार्थ और अन्याय से जूझ रहा है, तब महाभारत की शिक्षाएँ और भी अधिक प्रासंगिक हो जाती हैं। यह महाग्रंथ मानव को सत्य, धर्म और न्याय के मार्ग पर चलने की प्रेरणा देता है।

4. कुरुक्षेत्र युद्ध : मानव जीवन का प्रतीक

कुरुक्षेत्र युद्ध केवल कौरवों और पाण्डवों के मध्य लड़ा गया एक ऐतिहासिक युद्ध नहीं था, बल्कि यह मानव जीवन के भीतर चलने वाले नैतिक, मानसिक और आध्यात्मिक संघर्ष का गहरा प्रतीक है। महाभारत में वर्णित यह युद्ध सत्य और असत्य, धर्म और अधर्म, न्याय और अन्याय, विवेक और मोह, तथा आत्मसंयम और अहंकार के बीच होने वाले सनातन संघर्ष को प्रकट करता है। यही कारण है कि कुरुक्षेत्र केवल एक भौतिक भूमि नहीं, बल्कि मानव चेतना का प्रतीक माना गया है। महाभारत का यह महान युद्ध हमें यह सिखाता है कि प्रत्येक मनुष्य के भीतर दो शक्तियाँ निरंतर संघर्ष करती रहती हैं। एक ओर सत्य, करुणा, न्याय, धैर्य और धर्म की प्रवृत्तियाँ हैं, तो दूसरी ओर लोभ, क्रोध, अहंकार, ईर्ष्या और मोह जैसी विनाशकारी शक्तियाँ। जब मनुष्य विवेक का अनुसरण करता है, तब वह पाण्डवों के मार्ग पर चलता है; और जब अहंकार तथा लोभ उसके जीवन पर हावी हो जाते हैं, तब वह कौरवों के मार्ग की ओर अग्रसर हो जाता है। महाभारत में पाण्डवों को धर्म, सत्य और न्याय का प्रतीक माना गया है। युधिष्ठिर सत्य और धर्म के प्रतीक हैं, अर्जुन कर्तव्य और कर्मयोग के, भीम साहस और शक्ति के, तथा नकुल और सहदेव विनम्रता और ज्ञान के प्रतीक हैं। दूसरी ओर दुर्योधन लोभ, अहंकार और ईर्ष्या का प्रतिनिधित्व करता है, जबकि शकुनि छल और कूटनीति का प्रतीक है।

कुरुक्षेत्र का युद्ध वास्तव में मनुष्य के अंतःकरण में चलने वाले युद्ध का प्रतीक है। प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवन में अनेक बार ऐसी परिस्थितियों का सामना करता है, जहाँ उसे धर्म और अधर्म के बीच चुनाव करना पड़ता है। कई बार मनुष्य सत्य को जानता है, परंतु मोह, स्वार्थ और भय के कारण उसका पालन नहीं कर पाता। यही मानव मन की सबसे बड़ी दुर्बलता है। दुर्योधन का यह प्रसिद्ध कथन मानव स्वभाव की इसी कमजोरी को अत्यंत प्रभावशाली रूप में व्यक्त करता है—

"जानामि धर्मं न च मे प्रवृत्तिः।
जानाम्यधर्मं न च मे निवृत्तिः॥"

अर्थात् मैं धर्म को जानता हूँ, पर उसमें प्रवृत्त नहीं हो पाता; अधर्म को जानता हूँ, पर उससे दूर नहीं हो पाता। यह श्लोक केवल दुर्योधन के चरित्र का वर्णन नहीं करता, बल्कि सम्पूर्ण मानव समाज की मानसिक स्थिति को प्रकट करता है। आधुनिक मनुष्य भी अनेक बार यह जानता है कि क्या सही है और क्या गलत, फिर भी वह स्वार्थ, लालच और अहंकार के कारण गलत मार्ग पर चल पड़ता है। महाभारत यह स्पष्ट करता है कि जब विवेक पर अहंकार हावी हो जाता है, तब विनाश निश्चित हो जाता है। दुर्योधन का अहंकार इतना प्रबल था कि उसने श्रीकृष्ण जैसे महान मार्गदर्शक की सलाह भी अस्वीकार

कर दी। उसने केवल पाँच गांव देने से इनकार कर सम्पूर्ण कुरुवंश को विनाश की ओर धकेल दिया। यह प्रसंग यह शिक्षा देता है कि अहंकार मनुष्य की बुद्धि को नष्ट कर देता है। श्रीकृष्ण ने अर्जुन को जो उपदेश दिया, वह केवल युद्ध के लिए प्रेरणा नहीं था, बल्कि जीवन के नैतिक संघर्षों में सही मार्ग चुनने की शिक्षा थी। जब अर्जुन मोह और करुणा से व्याकुल होकर अपने कर्तव्य से पीछे हटने लगे, तब श्रीकृष्ण ने उन्हें आत्मज्ञान और कर्मयोग का उपदेश दिया—

"क्लैब्यं मा स्म गमः पार्थ नैतत्त्वय्युपपद्यते।
क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परन्तप॥"

अर्थात् हे पार्थ! यह कायरता तुम्हारे योग्य नहीं है। हृदय की दुर्बलता को त्यागकर उठो और अपने कर्तव्य का पालन करो। यह श्लोक मनुष्य को मानसिक दुर्बलताओं से ऊपर उठकर धर्मपूर्ण कर्म करने की प्रेरणा देता है। कुरुक्षेत्र युद्ध यह भी सिखाता है कि जीवन में संघर्ष अवश्यंभावी है। जो व्यक्ति संघर्ष से भागता है, वह अपने कर्तव्य से विमुख हो जाता है। अर्जुन प्रारंभ में युद्ध से बचना चाहते थे, क्योंकि उन्हें अपने बंधु-बांधवों के विनाश का भय था। परंतु श्रीकृष्ण ने उन्हें समझाया कि अन्याय और अधर्म के विरुद्ध संघर्ष करना ही सच्चा धर्म है। गीता में श्रीकृष्ण कहते हैं— "स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः॥" अर्थात् अपने धर्म का पालन करते हुए मृत्यु भी कल्याणकारी है, जबकि दूसरे के धर्म का पालन भय उत्पन्न करने वाला है। यह शिक्षा मनुष्य को अपने कर्तव्य के प्रति निष्ठावान रहने की प्रेरणा देती है।

महाभारत का कुरुक्षेत्र युद्ध केवल बाहरी युद्ध नहीं, बल्कि आंतरिक आत्मसंघर्ष का प्रतीक भी है। अर्जुन का संशय, दुर्योधन का अहंकार, भीष्म की विवशता, कर्ण का आत्मद्वंद्व और धृतराष्ट्र का मोह — ये सभी मानव मन की विभिन्न अवस्थाओं का प्रतिनिधित्व करते हैं। कर्ण का जीवन विशेष रूप से मानव जीवन के आंतरिक संघर्ष का उदाहरण है। वे जानते थे कि दुर्योधन अधर्म के मार्ग पर है, फिर भी मित्रता और उपकार के कारण उसके पक्ष में खड़े रहे। उनका जीवन यह सिखाता है कि केवल महान गुण होना पर्याप्त नहीं, बल्कि सही पक्ष का चयन करना भी आवश्यक है। इसी प्रकार भीष्म धर्म को जानते हुए भी हस्तिनापुर के सिंहासन के प्रति अपनी प्रतिज्ञा के कारण अधर्म के पक्ष में युद्ध करते रहे। यह स्थिति दर्शाती है कि कभी-कभी मनुष्य कर्तव्य और नैतिकता के बीच उलझ जाता है। महाभारत में कुरुक्षेत्र युद्ध को धर्मक्षेत्र भी कहा गया है— "धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता युयुत्सवः।" यह श्लोक संकेत करता है कि यह युद्ध केवल भूमि के अधिकार के लिए नहीं, बल्कि धर्म की स्थापना के लिए था। "धर्मक्षेत्र" शब्द यह स्पष्ट करता है कि मानव जीवन का प्रत्येक कर्मक्षेत्र वास्तव में धर्मक्षेत्र है, जहाँ मनुष्य को सत्य और असत्य के बीच निर्णय लेना पड़ता है।

आधुनिक जीवन में भी कुरुक्षेत्र का युद्ध निरंतर जारी है। आज मनुष्य भौतिक सुखों, प्रतिस्पर्धा, लोभ और स्वार्थ में उलझकर नैतिक मूल्यों से दूर होता जा रहा है। परिवारों में संघर्ष, राजनीति में भ्रष्टाचार, समाज में हिंसा और व्यक्तिगत जीवन में तनाव — ये सभी आधुनिक कुरुक्षेत्र के रूप हैं। महाभारत हमें यह सिखाता है कि यदि मनुष्य अपने भीतर के अर्जुन को जागृत कर श्रीकृष्ण के ज्ञान का अनुसरण करे, तो वह जीवन के प्रत्येक संघर्ष में विजय प्राप्त कर सकता है। गीता का यह श्लोक आत्मविश्वास और आत्मबल का संदेश देता है— "उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत्।" अर्थात् मनुष्य को स्वयं अपने उत्थान का प्रयास करना चाहिए, स्वयं को पतन की ओर नहीं ले जाना चाहिए। अतः कुरुक्षेत्र का युद्ध केवल प्राचीन भारत का युद्ध नहीं, बल्कि सम्पूर्ण मानव जीवन का प्रतीक है। यह युद्ध हमें यह सिखाता है कि जीवन में धर्म और सत्य का मार्ग कठिन अवश्य हो सकता है, परंतु अंततः विजय उसी की होती है। महाभारत का यह संदेश आज भी उतना ही प्रासंगिक है जितना हजारों वर्ष पूर्व था।

5. श्रीमद्भगवद्गीता : महाभारत का दार्शनिक हृदय

श्रीमद्भगवद्गीता को महाभारत का दार्शनिक हृदय कहा जाता है। महाभारत के भीष्मपर्व में वर्णित गीता केवल एक धार्मिक ग्रंथ नहीं, बल्कि सम्पूर्ण मानवता के लिए जीवन-दर्शन का अमर संदेश है। यह ग्रंथ युद्धभूमि में उत्पन्न उस मानसिक और नैतिक संकट का समाधान प्रस्तुत करता है, जिसका सामना प्रत्येक मनुष्य अपने जीवन में कभी न कभी करता है। जब अर्जुन कुरुक्षेत्र के मैदान में अपने ही बंधु-बांधवों, गुरुजनों और मित्रों को सामने देखकर मोह, करुणा और संशय से व्याकुल हो जाते हैं, तब वे अपने कर्तव्य से विमुख होने लगते हैं। उनके हाथ से गांडीव धनुष छूटने लगता है और वे युद्ध न करने का निर्णय लेने लगते हैं। ऐसी स्थिति में श्रीकृष्ण उन्हें जो दिव्य उपदेश देते हैं, वही भगवद्गीता कहलाता है। गीता केवल अर्जुन के

लिए नहीं, बल्कि सम्पूर्ण मानव समाज के लिए है। यह जीवन के प्रत्येक संकट, भ्रम, दुख और संघर्ष में मार्गदर्शन प्रदान करती है। इसमें कर्म, ज्ञान, भक्ति, आत्मा, योग, धर्म, मोक्ष और मानव जीवन के उद्देश्य का अत्यंत गहन विवेचन मिलता है। यही कारण है कि गीता को भारतीय दर्शन का सार कहा जाता है।

5.1 कर्मयोग

गीता का सबसे महत्वपूर्ण और लोकप्रिय सिद्धांत कर्मयोग है। श्रीकृष्ण मनुष्य को यह शिक्षा देते हैं कि उसका अधिकार केवल कर्म करने में है, फल पर नहीं। गीता का यह प्रसिद्ध श्लोक कर्मयोग का मूल आधार है—

"कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि॥"

अर्थात् मनुष्य का अधिकार केवल कर्म करने में है, उसके फल में कभी नहीं। इसलिए कर्म के फल को ही अपना उद्देश्य मत बनाओ और अकर्मण्यता में भी आसक्त मत हो। यह श्लोक मानव जीवन की सबसे बड़ी समस्या — फल की चिंता — का समाधान प्रस्तुत करता है। आधुनिक युग में मनुष्य तनाव, चिंता, अवसाद और असंतोष से घिरा हुआ है, क्योंकि वह कर्म से अधिक उसके परिणाम के बारे में सोचता है। सफलता की अत्यधिक इच्छा और असफलता का भय व्यक्ति को मानसिक रूप से कमजोर बना देता है। गीता सिखाती है कि यदि मनुष्य निस्वार्थ भाव से अपना कर्तव्य करे, तो उसका मन शांत और संतुलित रहेगा। कर्मयोग का अर्थ केवल कर्म करना नहीं, बल्कि धर्मपूर्वक, निस्वार्थ और समर्पित भाव से कर्म करना है। श्रीकृष्ण अर्जुन को युद्ध करने के लिए प्रेरित करते हुए कहते हैं कि अन्याय और अधर्म के विरुद्ध संघर्ष करना उनका कर्तव्य है। यहाँ कर्मयोग केवल युद्ध तक सीमित नहीं, बल्कि जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में कर्तव्यनिष्ठा का संदेश देता है।

गीता में कहा गया है— "योगः कर्मसु कौशलम्॥" अर्थात् कर्मों में कुशलता ही योग है। यह शिक्षा बताती है कि जब मनुष्य पूर्ण एकाग्रता, ईमानदारी और समर्पण के साथ अपना कार्य करता है, तभी वह वास्तविक योग की अवस्था को प्राप्त करता है। कर्मयोग मनुष्य को आलस्य और पलायनवाद से दूर रखता है। यह सिखाता है कि परिस्थितियाँ चाहे कितनी भी कठिन क्यों न हों, मनुष्य को अपने कर्तव्य का पालन करना चाहिए। यही कारण है कि गीता आज भी प्रबंधन, नेतृत्व, प्रशासन और व्यक्तिगत विकास के क्षेत्र में अत्यंत उपयोगी मानी जाती है।

5.2 आत्मा का दर्शन

गीता का दूसरा अत्यंत महत्वपूर्ण पक्ष आत्मा का दर्शन है। अर्जुन युद्ध में अपने प्रियजनों की मृत्यु की कल्पना करके शोक और मोह में डूब जाते हैं। तब श्रीकृष्ण उन्हें आत्मा की अमरता का ज्ञान देते हैं और समझाते हैं कि शरीर नश्वर है, परंतु आत्मा शाश्वत और अविनाशी है। गीता का यह प्रसिद्ध श्लोक आत्मा की अमरता को स्पष्ट करता है—

"न जायते म्रियते वा कदाचित्
नायं भूत्वा भविता वा न भूयः।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो
न हन्यते हन्यमाने शरीरे॥"

अर्थात् आत्मा न कभी जन्म लेती है और न कभी मरती है। वह अजन्मा, नित्य, शाश्वत और सनातन है। शरीर के नष्ट होने पर भी आत्मा नष्ट नहीं होती। यह शिक्षा मानव जीवन को गहन आध्यात्मिक दृष्टि प्रदान करती है। मनुष्य का अधिकांश भय मृत्यु से जुड़ा होता है, परंतु गीता यह सिखाती है कि मृत्यु केवल शरीर का परिवर्तन है, आत्मा का अंत नहीं। श्रीकृष्ण आगे कहते हैं—

"वासांसि जीर्णानि यथा विहाय
नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।

तथा शरीराणि विहाय जीर्णा
न्यन्यानि संयाति नवानि देही॥"

अर्थात् जैसे मनुष्य पुराने वस्त्रों को त्यागकर नए वस्त्र धारण करता है, उसी प्रकार आत्मा पुराने शरीर को छोड़कर नया शरीर धारण करती है। यह दर्शन मनुष्य को जीवन और मृत्यु के वास्तविक सत्य से परिचित कराता है। इससे मृत्यु का भय समाप्त होता है और जीवन के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण विकसित होता है। आत्मा के अमरत्व का यह सिद्धांत भारतीय दर्शन की आधारशिला माना जाता है। आधुनिक युग में जब मनुष्य मानसिक तनाव, भय और असुरक्षा से घिरा हुआ है, तब गीता का यह संदेश अत्यंत प्रासंगिक हो जाता है। यह मनुष्य को आत्मविश्वास, धैर्य और आंतरिक शांति प्रदान करता है।

5.3 समत्व का संदेश

गीता का एक अत्यंत महत्वपूर्ण सिद्धांत समत्व या मानसिक संतुलन है। श्रीकृष्ण अर्जुन को सिखाते हैं कि जीवन में सुख-दुःख, लाभ-हानि, जय-पराजय जैसी परिस्थितियाँ आती-जाती रहती हैं। जो व्यक्ति इन परिस्थितियों में संतुलित रहता है, वही वास्तविक योगी है। श्रीकृष्ण कहते हैं— "समत्वं योग उच्यते॥" अर्थात् समभाव रखना ही योग है। यह छोटा-सा श्लोक गीता के गहन मनोवैज्ञानिक दर्शन को व्यक्त करता है। समत्व का अर्थ है — परिस्थितियाँ कैसी भी हों, मनुष्य का मन स्थिर और संतुलित बना रहे। गीता में आगे कहा गया है—

"सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ।
ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि॥"

अर्थात् सुख-दुःख, लाभ-हानि और जय-पराजय को समान समझकर अपने कर्तव्य का पालन करो। यह शिक्षा आधुनिक जीवन में अत्यंत उपयोगी है। आज का मनुष्य छोटी-छोटी असफलताओं से टूट जाता है और थोड़ी-सी सफलता से अहंकारी हो जाता है। मानसिक असंतुलन, तनाव और अवसाद का मुख्य कारण यही है कि मनुष्य परिस्थितियों के अनुसार अत्यधिक प्रभावित हो जाता है। गीता सिखाती है कि वास्तविक शांति बाहरी उपलब्धियों से नहीं, बल्कि आंतरिक संतुलन से प्राप्त होती है। जो व्यक्ति समभाव रखता है, वही जीवन के संघर्षों का सामना धैर्य और विवेक से कर सकता है। समत्व का यह सिद्धांत केवल आध्यात्मिक नहीं, बल्कि सामाजिक और व्यावहारिक जीवन में भी अत्यंत उपयोगी है। परिवार, समाज, राजनीति, शिक्षा और कार्यक्षेत्र — हर जगह संतुलित दृष्टिकोण आवश्यक है।

श्रीमद्भगवद्गीता वास्तव में महाभारत का दार्शनिक हृदय है। यह केवल युद्धभूमि में दिया गया उपदेश नहीं, बल्कि सम्पूर्ण मानव जीवन के लिए मार्गदर्शक है। कर्मयोग मनुष्य को निस्वार्थ कर्म की प्रेरणा देता है, आत्मा का दर्शन उसे मृत्यु के भय से मुक्त करता है और समत्व का संदेश उसे मानसिक संतुलन प्रदान करता है। गीता की शिक्षाएँ कालातीत हैं। हजारों वर्षों बाद भी वे उतनी ही प्रासंगिक हैं जितनी कुरुक्षेत्र के युद्ध के समय थीं। आज के तनावपूर्ण, भौतिकवादी और संघर्षपूर्ण जीवन में गीता मानवता के लिए आशा, शांति और आत्मज्ञान का दिव्य प्रकाश स्तंभ है।

6. महाभारत के प्रमुख पात्र और उनका दार्शनिक महत्व

महाभारत केवल युद्ध और राजनीति का ग्रंथ नहीं है, बल्कि यह मानव चरित्र और मनोविज्ञान का भी महान दार्शनिक ग्रंथ है। महाभारत के प्रत्येक पात्र में मानव जीवन का कोई न कोई गुण, दोष, संघर्ष या आदर्श प्रतिबिंबित होता है। यही कारण है कि इसके पात्र केवल ऐतिहासिक या पौराणिक चरित्र नहीं, बल्कि मानव चेतना के प्रतीक बन गए हैं। इन पात्रों के माध्यम से सत्य, धर्म, त्याग, करुणा, अहंकार, मोह, प्रतिशोध, नारी अस्मिता तथा सामाजिक संघर्ष जैसे गहन विषयों का विश्लेषण किया गया है। महाभारत के प्रमुख पात्रों का दार्शनिक महत्व आज भी उतना ही प्रासंगिक है जितना प्राचीन काल में था। उनके जीवन से मानव समाज को नैतिकता, आत्मसंयम, कर्तव्य और न्याय का संदेश प्राप्त होता है।

6.1 युधिष्ठिर : सत्य और धर्म के प्रतीक

युधिष्ठिर महाभारत में सत्य, न्याय, धैर्य और धर्म के सर्वोच्च प्रतीक माने जाते हैं। वे पाण्डवों में ज्येष्ठ थे और "धर्मराज" के नाम से प्रसिद्ध हुए। उनका जन्म स्वयं धर्मदेव के वरदान से हुआ था, इसलिए उनके चरित्र में धर्म, सत्य और न्याय की विशेष प्रधानता दिखाई देती है। युधिष्ठिर का सम्पूर्ण जीवन अनेक कठिनाइयों, संघर्षों और नैतिक परीक्षाओं से भरा हुआ था। उन्होंने राज्य, वैभव और सुख खो दिए, वनवास सहा, अपमान झेला, परंतु फिर भी धर्म का मार्ग नहीं छोड़ा। उनका चरित्र यह शिक्षा देता है कि सत्य का मार्ग कठिन अवश्य हो सकता है, परंतु अंततः विजय उसी की होती है। महाभारत में कहा गया है— "सत्यं हि परमं धर्मः।" अर्थात् सत्य ही सर्वोच्च धर्म है। यह सिद्धांत युधिष्ठिर के सम्पूर्ण जीवन में दिखाई देता है। द्यूत-क्रीड़ा में सब कुछ हार जाने के बाद भी युधिष्ठिर ने धैर्य नहीं खोया। वनवास के कठिन समय में भी उन्होंने क्रोध, प्रतिशोध और अधर्म का मार्ग नहीं अपनाया। उनका जीवन यह सिद्ध करता है कि वास्तविक शक्ति बाहुबल में नहीं, बल्कि आत्मसंयम और सत्यनिष्ठा में होती है। यक्ष-प्रश्न प्रसंग युधिष्ठिर की बुद्धिमत्ता और धर्मज्ञान का श्रेष्ठ उदाहरण है। जब उनके सभी भाई सरोवर का जल पीकर मूर्छित हो गए, तब यक्ष ने युधिष्ठिर से अनेक दार्शनिक प्रश्न पूछे। युधिष्ठिर ने अत्यंत विवेकपूर्ण उत्तर दिए। इस प्रसंग में उनका यह उत्तर अत्यंत प्रसिद्ध है—

"अह्न्यहनि भूतानि गच्छन्ति यममन्दिरम्।
शेषाः स्थिरत्वमिच्छन्ति किमाश्चर्यमतः परम्॥"

अर्थात् प्रतिदिन असंख्य प्राणी मृत्यु को प्राप्त होते हैं, फिर भी जीवित मनुष्य स्वयं को अमर मानता है — इससे बड़ा आश्चर्य क्या हो सकता है? यह उत्तर जीवन की अनित्यता और मानव अहंकार पर गहरा दार्शनिक चिंतन प्रस्तुत करता है। युधिष्ठिर का जीवन यह भी सिखाता है कि धर्म केवल नियमों का पालन नहीं, बल्कि न्यायपूर्ण और करुणामय व्यवहार है। युद्ध के बाद भी उन्होंने प्रतिशोध के स्थान पर शांति और क्षमा का मार्ग अपनाया। यही कारण है कि वे भारतीय संस्कृति में आदर्श राजा और धर्मनिष्ठ मानव के प्रतीक माने जाते हैं।

6.2 भीष्म : त्याग और प्रतिज्ञा के प्रतीक

भीष्म महाभारत के सबसे महान और जटिल पात्रों में से एक हैं। उनका वास्तविक नाम देवव्रत था, परंतु उनकी भीषण प्रतिज्ञा के कारण वे "भीष्म" कहलाए। उनका जीवन त्याग, अनुशासन, कर्तव्यपरायणता और आत्मसंयम का अनुपम उदाहरण है। भीष्म ने अपने पिता राजा शांतनु की इच्छा पूरी करने के लिए आजीवन ब्रह्मचर्य का पालन करने तथा हस्तिनापुर के सिंहासन पर कभी अधिकार न करने की प्रतिज्ञा ली। उनकी इस भयंकर प्रतिज्ञा से देवता भी आश्चर्यचकित हो गए थे। तभी आकाशवाणी हुई— "भीष्म इति।" अर्थात् यह प्रतिज्ञा अत्यंत भीषण है, इसलिए उनका नाम भीष्म पड़ा। भीष्म का जीवन त्याग और कर्तव्यनिष्ठा का सर्वोच्च उदाहरण है। उन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन हस्तिनापुर की सेवा और रक्षा में समर्पित कर दिया। वे महान योद्धा, नीति-ज्ञाता और धर्म के गहन व्याख्याता थे। शान्तिपर्व में भीष्म ने राजधर्म, मोक्षधर्म और नीति का विस्तृत उपदेश दिया। उनका यह कथन अत्यंत प्रसिद्ध है— "अहिंसा परमो धर्मः।" अर्थात् अहिंसा ही परम धर्म है। यह शिक्षा मानवता, करुणा और शांति का सर्वोच्च संदेश देती है। भीष्म का चरित्र अत्यंत प्रेरणादायक होने के साथ-साथ गहन दार्शनिक प्रश्न भी प्रस्तुत करता है। वे धर्म को जानते थे, फिर भी हस्तिनापुर के सिंहासन के प्रति अपनी प्रतिज्ञा के कारण कौरवों के पक्ष में युद्ध करने को बाध्य हुए। द्रौपदी चीरहरण के समय उनका मौन रहना भारतीय नैतिक चिंतन में एक गंभीर प्रश्न के रूप में देखा जाता है। भीष्म का जीवन यह सिखाता है कि अत्यधिक प्रतिज्ञाबद्धता और अंधनिष्ठा कभी-कभी अन्याय के समर्थन का कारण बन सकती है। केवल कर्तव्य का पालन पर्याप्त नहीं, बल्कि यह भी आवश्यक है कि कर्तव्य धर्म और न्याय के अनुरूप हो। उनका जीवन त्याग और विवशता, दोनों का अद्भुत मिश्रण है। यही कारण है कि भीष्म भारतीय दर्शन में आदर्श और चेतावनी — दोनों के प्रतीक माने जाते हैं।

6.3 कर्ण : दानवीरता और त्रासदी का प्रतीक

कर्ण महाभारत के सबसे मार्मिक और जटिल पात्रों में से एक हैं। वे महान योद्धा, अद्वितीय धनुर्धर, दानवीर और अत्यंत स्वाभिमानी व्यक्ति थे, परंतु उनका जीवन सामाजिक उपेक्षा, पीड़ा और त्रासदी से भरा हुआ था। कर्ण वास्तव में कुंती और

सूर्यदेव के पुत्र थे, परंतु जन्म के तुरंत बाद उन्हें समाज के भय से त्याग दिया गया। उनका पालन-पोषण एक सारथि परिवार में हुआ। समाज ने उन्हें "सूतपुत्र" कहकर अपमानित किया और उनकी प्रतिभा को उचित सम्मान नहीं दिया। कर्ण का जीवन यह दर्शाता है कि सामाजिक भेदभाव और अन्याय किसी प्रतिभाशाली व्यक्ति को भी गलत दिशा में ले जा सकते हैं। वे अर्जुन के समान महान योद्धा थे, परंतु अपमान और अस्वीकार ने उनके भीतर प्रतिशोध की भावना उत्पन्न कर दी। कर्ण की सबसे बड़ी विशेषता उनकी दानवीरता थी। कहा जाता है कि वे कभी किसी याचक को खाली हाथ नहीं लौटाते थे। उनका यह आदर्श भारतीय संस्कृति में दान और उदारता का सर्वोच्च प्रतीक बन गया। महाभारत में कर्ण के लिए कहा गया है— "दानवीरः कर्णः।" कर्ण का जीवन मित्रता और निष्ठा का भी महान उदाहरण है। दुर्योधन ने जब समाज में उनका सम्मान किया, तब कर्ण ने जीवनभर उसका साथ निभाया। वे जानते थे कि दुर्योधन अधर्म के मार्ग पर है, फिर भी मित्रता और कृतज्ञता के कारण उसके पक्ष में खड़े रहे। उनका जीवन यह सिखाता है कि केवल महान गुण और प्रतिभा पर्याप्त नहीं, बल्कि सही पक्ष का चयन भी आवश्यक है। कर्ण की त्रासदी यह थी कि वे धर्म को जानते हुए भी अधर्म के पक्ष में खड़े रहे। युद्धभूमि में मृत्यु से पूर्व कर्ण का चरित्र अत्यंत करुण और महान दिखाई देता है। उन्होंने अंतिम समय तक दान और साहस का त्याग नहीं किया। उनका जीवन मानव संघर्ष, आत्मसम्मान और सामाजिक पीड़ा का अमर प्रतीक बन गया।

6.4 द्रौपदी : नारी सम्मान और शक्ति का प्रतीक

द्रौपदी महाभारत की सबसे शक्तिशाली और प्रभावशाली स्त्री पात्र हैं। वे भारतीय नारी शक्ति, आत्मसम्मान, साहस और न्याय की प्रतीक मानी जाती हैं। उनका चरित्र यह सिद्ध करता है कि नारी केवल करुणा और सहनशीलता की प्रतीक नहीं, बल्कि प्रतिरोध और न्याय की भी शक्ति है। द्रौपदी का जन्म अग्निकुंड से हुआ था, इसलिए उन्हें "यज्ञसेनी" भी कहा जाता है। वे अत्यंत बुद्धिमान, स्वाभिमानी और तेजस्विनी थीं। उनका जीवन अनेक संघर्षों और अपमानों से भरा था, परंतु उन्होंने कभी आत्मसम्मान से समझौता नहीं किया।द्रौपदी चीरहरण का प्रसंग महाभारत की सबसे मार्मिक और नैतिक दृष्टि से महत्वपूर्ण घटना है। द्यूत-क्रीड़ा में युधिष्ठिर द्वारा उन्हें दांव पर हारने के बाद सभा में उनका अपमान किया गया। उस समय सभा में भीष्म, द्रोण, विदुर और धृतराष्ट्र जैसे महान पुरुष उपस्थित थे, फिर भी अधिकांश लोग मौन रहे। यह प्रसंग भारतीय समाज के लिए एक गंभीर नैतिक प्रश्न प्रस्तुत करता है— जब अन्याय हो रहा हो, तब मौन रहना क्या स्वयं अधर्म नहीं है? द्रौपदी ने सभा में प्रश्न किया— "सभायां धर्मः कः?" अर्थात् इस सभा में धर्म कहाँ है? उनका यह प्रश्न आज भी मानवता के अंतःकरण को झकझोरता है। द्रौपदी का चरित्र यह स्पष्ट करता है कि नारी को वस्तु या संपत्ति नहीं माना जा सकता। वे अन्याय के विरुद्ध आवाज उठाने वाली शक्ति का प्रतीक हैं। जब सभी मौन थे, तब द्रौपदी ने धर्म और न्याय का प्रश्न उठाया। यही उनकी महानता है। द्रौपदी का जीवन यह शिक्षा देता है कि आत्मसम्मान और न्याय के लिए संघर्ष करना ही वास्तविक साहस है। वे केवल पीड़ित नारी नहीं, बल्कि परिवर्तन और प्रतिरोध की प्रतीक हैं। महाभारत में द्रौपदी का अपमान ही अंततः कुरुक्षेत्र युद्ध का कारण बना। इससे यह स्पष्ट होता है कि जब समाज में नारी सम्मान की रक्षा नहीं होती, तब विनाश अवश्यंभावी हो जाता है।

महाभारत के ये प्रमुख पात्र केवल पौराणिक चरित्र नहीं, बल्कि मानव जीवन के विभिन्न आदर्शों, संघर्षों और कमजोरियों के प्रतीक हैं। युधिष्ठिर सत्य और धर्म के, भीष्म त्याग और कर्तव्य के, कर्ण संघर्ष और दानवीरता के, तथा द्रौपदी नारी अस्मिता और न्याय के प्रतीक हैं। इन पात्रों के माध्यम से महाभारत मानव जीवन के गहन दार्शनिक और नैतिक प्रश्नों का समाधान प्रस्तुत करता है। यही कारण है कि महाभारत आज भी सम्पूर्ण मानवता के लिए प्रेरणा और आत्मचिंतन का महान स्रोत बना हुआ है।

7. महाभारत में राजनीति और राज्यशास्त्र

महाभारत केवल धर्म, दर्शन और आध्यात्मिकता का ही ग्रंथ नहीं है, बल्कि यह राजनीति, प्रशासन, कूटनीति और राज्यशास्त्र का भी अत्यंत महत्वपूर्ण स्रोत है। महाभारत में शासन व्यवस्था, राजधर्म, न्याय, नेतृत्व, कूटनीति, प्रशासनिक नीति, मंत्रीपरिषद, युद्धनीति तथा प्रजा-कल्याण जैसे विषयों का अत्यंत गहन विवेचन किया गया है। यही कारण है कि इसे भारतीय राजनीतिक चिंतन का आधारभूत ग्रंथ माना जाता है। महाभारत यह स्पष्ट करता है कि राज्य केवल शक्ति और वैभव का साधन नहीं, बल्कि लोककल्याण और न्याय की व्यवस्था है। यदि शासन में नैतिकता, धर्म और न्याय का अभाव हो जाए, तो समाज में अराजकता और विनाश उत्पन्न हो जाता है। कुरुक्षेत्र युद्ध स्वयं एक अन्यायी और अहंकारी शासन व्यवस्था का परिणाम था। महाभारत में राजनीति को केवल सत्ता प्राप्ति का माध्यम नहीं माना गया, बल्कि उसे धर्म और लोकमंगल से जोड़ा गया है।

यही कारण है कि इस ग्रंथ में आदर्श शासक, आदर्श मंत्री तथा आदर्श राज्य की अवधारणा अत्यंत स्पष्ट रूप से दिखाई देती है।

7.1 विदुर नीति

विदुर महाभारत के सबसे बुद्धिमान, न्यायप्रिय और दूरदर्शी पात्रों में से एक हैं। वे धृतराष्ट्र के मंत्री थे और अपनी नीति, नैतिकता तथा धर्मज्ञान के कारण अत्यंत सम्मानित थे। महाभारत में वर्णित "विदुर नीति" भारतीय राजनीति, प्रशासन और नैतिक जीवन का अमूल्य मार्गदर्शन मानी जाती है। विदुर नीति मुख्यतः उद्योगपर्व में वर्णित है, जहाँ विदुर धृतराष्ट्र को धर्म, न्याय और सुशासन का उपदेश देते हैं। उनके उपदेश केवल प्राचीन राजाओं के लिए ही नहीं, बल्कि आधुनिक प्रशासन, नेतृत्व, प्रबंधन और सामाजिक जीवन के लिए भी अत्यंत प्रासंगिक हैं। विदुर ने शासन में नैतिकता और बुद्धिमत्ता के महत्त्व को स्पष्ट करते हुए कहा—

"न सा सभा यत्र न सन्ति वृद्धाः।
न ते वृद्धा ये न वदन्ति धर्मम्॥"

अर्थात् वह सभा सभा नहीं जहाँ अनुभवी और बुद्धिमान व्यक्ति उपस्थित न हों, और वे वृद्ध भी वास्तविक वृद्ध नहीं जो धर्म और सत्य की बात न करें। यह श्लोक लोकतांत्रिक शासन और सामाजिक नेतृत्व की आधारभूत आवश्यकता को स्पष्ट करता है। किसी भी राज्य या संस्था की सफलता केवल शक्ति पर नहीं, बल्कि बुद्धिमत्ता, नैतिकता और अनुभवी नेतृत्व पर निर्भर करती है। विदुर ने राजा को चेतावनी देते हुए कहा कि लोभ, क्रोध, अहंकार और अन्याय शासन को विनाश की ओर ले जाते हैं। उन्होंने धृतराष्ट्र को अनेक बार समझाया कि दुर्योधन का अन्यायी व्यवहार सम्पूर्ण कुरुवंश के विनाश का कारण बनेगा, परंतु धृतराष्ट्र पुत्रमोह के कारण सत्य को स्वीकार नहीं कर सके। विदुर नीति में कहा गया है—

"त्यजेदेकं कुलस्यार्थे ग्रामस्यार्थे कुलं त्यजेत्।
ग्रामं जनपदस्यार्थे आत्मार्थे पृथिवीं त्यजेत्॥"

अर्थात् कुल की रक्षा के लिए एक व्यक्ति का त्याग करना चाहिए, ग्राम की रक्षा के लिए कुल का, जनपद की रक्षा के लिए ग्राम का, और आत्मकल्याण के लिए सम्पूर्ण पृथ्वी का त्याग भी उचित है। यह शिक्षा राज्य और समाज के व्यापक हित को व्यक्तिगत स्वार्थ से ऊपर रखने का संदेश देती है। आधुनिक राजनीति में जहाँ स्वार्थ और भ्रष्टाचार बढ़ते जा रहे हैं, वहाँ विदुर नीति अत्यंत प्रासंगिक हो जाती है। विदुर ने यह भी कहा कि राजा को सदैव सत्यवादी, धैर्यवान, न्यायप्रिय और आत्मसंयमी होना चाहिए। जो शासक क्रोध और लोभ के अधीन होकर निर्णय लेता है, उसका राज्य अधिक समय तक टिक नहीं सकता। उन्होंने कहा— "धर्मेण राज्यं विन्धेत।" अर्थात् राज्य की स्थापना और संचालन धर्म के आधार पर होना चाहिए। यह सिद्धांत भारतीय राजनीतिक दर्शन का मूल आधार माना जाता है। विदुर नीति आधुनिक प्रबंधन और प्रशासन में भी अत्यंत उपयोगी मानी जाती है। आज नेतृत्व, संगठन प्रबंधन और शासन व्यवस्था में नैतिकता, पारदर्शिता और विवेक की आवश्यकता पहले से अधिक बढ़ गई है। विदुर की शिक्षाएँ आज भी आदर्श नेतृत्व का मार्गदर्शन करती हैं।

7.2 राजधर्म

महाभारत में "राजधर्म" का अत्यंत विस्तृत और गहन विवेचन मिलता है। विशेष रूप से शान्तिपर्व में भीष्म ने शरशय्या पर लेटे हुए युधिष्ठिर को आदर्श शासन, न्याय और राजधर्म का उपदेश दिया। यह उपदेश भारतीय राज्यशास्त्र और राजनीतिक दर्शन का अत्यंत महत्वपूर्ण स्रोत माना जाता है। महाभारत के अनुसार राजा केवल सत्ता का स्वामी नहीं, बल्कि प्रजा का संरक्षक और सेवक होता है। उसका प्रथम कर्तव्य प्रजा की रक्षा, न्याय की स्थापना और लोककल्याण करना है। यदि राजा धर्म से विचलित हो जाए, तो सम्पूर्ण राज्य संकट में पड़ जाता है। भीष्म ने कहा— "राजा धर्मस्य कारणम्।" अर्थात् राजा ही धर्म की स्थापना का मुख्य कारण होता है। यदि शासक धर्मनिष्ठ होगा, तो प्रजा भी धर्म का पालन करेगी। राजधर्म का मुख्य उद्देश्य न्याय और संतुलन स्थापित करना है। राजा को अपने व्यक्तिगत स्वार्थ से ऊपर उठकर प्रजा के हित में कार्य करना चाहिए। उसे लोभ, क्रोध, अहंकार और पक्षपात से दूर रहना चाहिए। भीष्म ने आदर्श राजा के गुणों का वर्णन करते हुए कहा

कि राजा को— सत्यवादी होना चाहिए , न्यायप्रिय होना चाहिए, करुणामय होना चाहिए, धैर्यवान और विवेकशील होना चाहिए, प्रजा के दुःख को अपना दुःख समझना चाहिए । राजा का सबसे बड़ा धर्म प्रजा की रक्षा है। महाभारत में कहा गया है—

"प्रजासुखे सुखं राज्ञः प्रजानां च हिते हितम्।
नात्मप्रियं हितं राज्ञः प्रजानां तु प्रियं हितम्॥"

अर्थात् राजा का सुख प्रजा के सुख में है और उसका हित प्रजा के हित में है। राजा को वही कार्य करना चाहिए जो प्रजा के लिए हितकारी हो। यह श्लोक भारतीय लोकतांत्रिक और कल्याणकारी शासन की मूल भावना को व्यक्त करता है। आधुनिक लोकतंत्र में भी सरकार का मुख्य उद्देश्य जनता का कल्याण और न्याय की स्थापना ही माना जाता है। महाभारत यह भी सिखाता है कि राज्य की शक्ति केवल सेना और धन में नहीं, बल्कि नैतिकता और जनविश्वास में होती है। दुर्योधन के पास विशाल सेना और सत्ता थी, परंतु उसके शासन में न्याय और धर्म का अभाव था। यही कारण था कि उसका राज्य नष्ट हो गया। राजधर्म का एक महत्वपूर्ण पक्ष दण्डनीति भी है। भीष्म के अनुसार राजा को अपराधियों के प्रति कठोर, परंतु निर्दोषों के प्रति करुणामय होना चाहिए। न्याय व्यवस्था निष्पक्ष और धर्मसम्मत होनी चाहिए। महाभारत में यह भी स्पष्ट किया गया है कि राजा को विद्वानों, मंत्रियों और योग्य सलाहकारों का सम्मान करना चाहिए। अकेले शासक द्वारा लिया गया निर्णय कई बार विनाशकारी हो सकता है। धृतराष्ट्र का उदाहरण इसका प्रमाण है, जिन्होंने विदुर और भीष्म की सलाह की उपेक्षा कर दी। राजधर्म का अंतिम उद्देश्य केवल शासन करना नहीं, बल्कि समाज में धर्म, शांति और समृद्धि स्थापित करना है। इसी कारण महाभारत में राजनीति को धर्म से अलग नहीं माना गया।

महाभारत में राजनीति और राज्यशास्त्र का स्वरूप अत्यंत व्यापक और गहन है। विदुर की नीतियाँ नैतिक प्रशासन और विवेकपूर्ण नेतृत्व का आदर्श प्रस्तुत करती हैं, जबकि भीष्म द्वारा प्रतिपादित राजधर्म आदर्श शासन की अवधारणा को स्पष्ट करता है। महाभारत यह शिक्षा देता है कि राज्य की वास्तविक शक्ति नैतिकता, न्याय और प्रजा-कल्याण में निहित है। यदि शासन धर्म और न्याय पर आधारित हो, तो समाज में शांति और समृद्धि बनी रहती है; अन्यथा विनाश निश्चित है। आज के लोकतांत्रिक युग में भी महाभारत की राजनीतिक शिक्षाएँ अत्यंत प्रासंगिक हैं। प्रशासन, नेतृत्व, राजनीति और प्रबंधन के क्षेत्र में इसकी नीतियाँ आज भी मानव समाज को दिशा प्रदान करती हैं।

8. महाभारत में शिक्षा और गुरु-शिष्य परंपरा

महाभारत भारतीय संस्कृति, दर्शन और नैतिक जीवन का महान ग्रंथ होने के साथ-साथ शिक्षा, ज्ञान और गुरु-शिष्य परंपरा का भी अद्वितीय स्रोत है। महाभारत में शिक्षा को केवल ज्ञान प्राप्ति का साधन नहीं माना गया, बल्कि चरित्र निर्माण, आत्मसंयम, अनुशासन, कर्तव्यबोध और व्यक्तित्व विकास का आधार माना गया है। इस महाकाव्य में गुरु और शिष्य के संबंध को अत्यंत पवित्र और आदर्श रूप में प्रस्तुत किया गया है। भारतीय संस्कृति में गुरु को ईश्वर से भी उच्च स्थान दिया गया है। गुरु केवल विद्या प्रदान करने वाला व्यक्ति नहीं, बल्कि जीवन का मार्गदर्शक, संस्कारदाता और आत्मज्ञान का स्रोत माना जाता है। महाभारत में यह भावना स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। शिक्षा का उद्देश्य केवल युद्धकला या शास्त्रज्ञान नहीं, बल्कि धर्म, नीति और जीवन मूल्यों की स्थापना भी था। महाभारत में अनेक महान गुरु और आदर्श शिष्य वर्णित हैं, जिनके माध्यम से भारतीय शिक्षा प्रणाली के आदर्श स्वरूप का चित्रण किया गया है।

गुरु का महत्व

भारतीय परंपरा में गुरु को ज्ञान का प्रकाश माना गया है। गुरु मनुष्य को अज्ञानरूपी अंधकार से निकालकर सत्य और ज्ञान के मार्ग पर ले जाता है। इसी भावना को व्यक्त करते हुए प्रसिद्ध श्लोक कहा गया है—

"गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुः गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुः साक्षात् परब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः॥"

अर्थात् गुरु ही ब्रह्मा, विष्णु और महेश हैं; गुरु ही साक्षात् परमब्रह्म हैं। ऐसे गुरु को प्रणाम है। महाभारत में गुरु और शिष्य का संबंध केवल औपचारिक नहीं, बल्कि गहन आध्यात्मिक और नैतिक संबंध के रूप में प्रस्तुत किया गया है। गुरु शिष्य के व्यक्तित्व को आकार देता है और उसे जीवन के संघर्षों के लिए तैयार करता है।

द्रोणाचार्य : युद्धकला और अनुशासन के महान गुरु

द्रोणाचार्य महाभारत में युद्धकला और शस्त्रविद्या के सबसे महान आचार्य माने जाते हैं। वे कौरवों और पाण्डवों दोनों के गुरु थे। द्रोणाचार्य केवल अस्त्र-शस्त्र चलाने की शिक्षा ही नहीं देते थे, बल्कि अनुशासन, एकाग्रता और कर्तव्यनिष्ठा का भी पाठ पढ़ाते थे। उनकी शिक्षा प्रणाली कठोर अनुशासन और समर्पण पर आधारित थी। वे मानते थे कि सफलता प्राप्त करने के लिए साधना, धैर्य और निरंतर अभ्यास आवश्यक है। द्रोणाचार्य के सबसे प्रिय शिष्य अर्जुन थे। अर्जुन की प्रतिभा, एकाग्रता और गुरु के प्रति समर्पण ने उन्हें अद्वितीय धनुर्धर बना दिया। एक प्रसिद्ध प्रसंग में द्रोणाचार्य ने अपने शिष्यों की परीक्षा लेते हुए पेड़ पर बैठी चिड़िया की आँख पर निशाना लगाने को कहा। जब उन्होंने अर्जुन से पूछा कि उन्हें क्या दिखाई दे रहा है, तो अर्जुन ने उत्तर दिया— "मम केवलं पक्षिणः नेत्रम् दृश्यते।" अर्थात् मुझे केवल पक्षी की आँख दिखाई दे रही है। यह उत्तर अर्जुन की अद्भुत एकाग्रता और लक्ष्यनिष्ठा को दर्शाता है। द्रोणाचार्य का जीवन यह शिक्षा देता है कि गुरु केवल ज्ञान नहीं देता, बल्कि शिष्य के भीतर छिपी प्रतिभा को भी पहचानता है और उसे सही दिशा प्रदान करता है।

कृपाचार्य : ज्ञान और संयम के प्रतीक

कृपाचार्य महाभारत में ज्ञान, संयम और अनुशासन के प्रतीक माने जाते हैं। वे हस्तिनापुर के राजगुरु थे और अत्यंत विद्वान तथा शांत स्वभाव के व्यक्ति थे। कृपाचार्य ने शिक्षा को केवल शस्त्रविद्या तक सीमित नहीं रखा, बल्कि नैतिकता, धर्म और व्यवहारिक ज्ञान को भी महत्त्व दिया। वे धैर्य, विवेक और संतुलित जीवन के आदर्श प्रस्तुत करते हैं। महाभारत में कृपाचार्य का चरित्र यह दर्शाता है कि सच्चा गुरु वह होता है जो शिष्य को केवल विद्वान ही नहीं, बल्कि नैतिक और जिम्मेदार व्यक्ति भी बनाए।

अर्जुन : आदर्श शिष्य

अर्जुन को भारतीय परंपरा में आदर्श शिष्य माना जाता है। उनकी सबसे बड़ी विशेषता थी — गुरु के प्रति श्रद्धा, अनुशासन, निरंतर अभ्यास और ज्ञान प्राप्ति की तीव्र इच्छा। अर्जुन केवल प्रतिभाशाली ही नहीं थे, बल्कि अत्यंत परिश्रमी भी थे। उन्होंने कठिन साधना और निरंतर अभ्यास के माध्यम से स्वयं को श्रेष्ठ धनुर्धर बनाया। महाभारत में कहा गया है— "श्रद्धावान् लभते ज्ञानम्॥" अर्थात् श्रद्धावान व्यक्ति ही ज्ञान प्राप्त करता है। अर्जुन का जीवन इस सिद्धांत का सर्वोत्तम उदाहरण है। अर्जुन का गुरु के प्रति समर्पण इतना गहरा था कि वे द्रोणाचार्य की प्रत्येक शिक्षा को पूर्ण मनोयोग से ग्रहण करते थे। यही कारण था कि वे द्रोणाचार्य के सबसे प्रिय शिष्य बने। कुरुक्षेत्र युद्ध में भी जब अर्जुन मोह और संशय में पड़ गए, तब उन्होंने श्रीकृष्ण को अपना गुरु स्वीकार करते हुए कहा— "शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्॥" अर्थात् मैं आपका शिष्य हूँ, मुझे शिक्षा दीजिए। यह विनम्रता और ज्ञान प्राप्ति की भावना अर्जुन को आदर्श शिष्य बनाती है।

8.1 एकलव्य प्रसंग

एकलव्य का प्रसंग महाभारत का अत्यंत मार्मिक और सामाजिक दृष्टि से महत्वपूर्ण प्रसंग है। यह केवल गुरु-भक्ति की कथा नहीं, बल्कि सामाजिक असमानता, जातिगत भेदभाव और शिक्षा के अधिकार जैसे गंभीर प्रश्नों को भी उजागर करता है। एकलव्य निषादराज हिरण्यधनु का पुत्र था। वह द्रोणाचार्य से धनुर्विद्या सीखना चाहता था, परंतु सामाजिक व्यवस्था और जातिगत भेदभाव के कारण द्रोणाचार्य ने उसे अपना शिष्य स्वीकार नहीं किया। परंतु एकलव्य ने हार नहीं मानी। उसने जंगल में द्रोणाचार्य की मिट्टी की प्रतिमा बनाकर स्वयं अभ्यास प्रारंभ किया। उसकी श्रद्धा, समर्पण और कठोर साधना ने उसे महान धनुर्धर बना दिया। यह प्रसंग यह सिद्ध करता है कि सच्ची लगन और आत्मविश्वास से मनुष्य बिना औपचारिक शिक्षा के भी महान उपलब्धियाँ प्राप्त कर सकता है। एकलव्य का गुरु-भक्ति भाव अत्यंत अद्वितीय था। जब द्रोणाचार्य ने गुरु-दक्षिणा में उसका अंगूठा माँगा, तब उसने बिना किसी विरोध के अपना अंगूठा काटकर अर्पित कर दिया। यह प्रसंग भारतीय संस्कृति

में गुरु-भक्ति का सर्वोच्च उदाहरण माना जाता है। किन्तु आधुनिक दृष्टि से यह प्रसंग सामाजिक असमानता और जातिगत भेदभाव पर गंभीर प्रश्न भी खड़े करता है। एकलव्य की प्रतिभा को केवल उसके जन्म और सामाजिक स्थिति के कारण उचित अवसर नहीं मिला। इससे यह स्पष्ट होता है कि प्राचीन समाज में शिक्षा सभी के लिए समान रूप से उपलब्ध नहीं थी। यह प्रसंग शिक्षा के अधिकार और सामाजिक न्याय की आवश्यकता को अत्यंत प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करता है। आज के लोकतांत्रिक और समानतावादी समाज में शिक्षा को प्रत्येक व्यक्ति का मौलिक अधिकार माना जाता है। एकलव्य का जीवन हमें यह प्रेरणा देता है कि प्रतिभा किसी जाति, वर्ग या सामाजिक स्थिति की मोहताज नहीं होती। एकलव्य का चरित्र संघर्ष, आत्मसम्मान, परिश्रम और समर्पण का अमर प्रतीक है। उनका जीवन यह शिक्षा देता है कि यदि मनुष्य में दृढ़ इच्छा शक्ति और साधना हो, तो वह विपरीत परिस्थितियों में भी महानता प्राप्त कर सकता है।

महाभारत में शिक्षा और गुरु-शिष्य परंपरा का स्वरूप अत्यंत व्यापक और गहन है। द्रोणाचार्य अनुशासन और युद्धकला के, कृपाचार्य ज्ञान और संयम के, तथा अर्जुन आदर्श शिष्यत्व के प्रतीक हैं। वहीं एकलव्य का प्रसंग यह दर्शाता है कि शिक्षा केवल विशेष वर्ग तक सीमित नहीं होनी चाहिए, बल्कि समाज के प्रत्येक व्यक्ति को समान अवसर मिलना चाहिए। महाभारत की शिक्षा परंपरा आज भी मानव समाज को ज्ञान, अनुशासन, समर्पण और सामाजिक न्याय का मार्ग दिखाती है।

9. महाभारत में स्त्री विमर्श

महाभारत भारतीय समाज, संस्कृति और मानव जीवन का ऐसा व्यापक ग्रंथ है, जिसमें स्त्री की स्थिति, उसकी शक्ति, पीड़ा, संघर्ष, त्याग और आत्मसम्मान का अत्यंत गहन चित्रण मिलता है। महाभारत में स्त्रियाँ केवल सहायक पात्र नहीं हैं, बल्कि वे घटनाओं की दिशा निर्धारित करने वाली केंद्रीय शक्तियाँ हैं। उनके निर्णय, भावनाएँ, संघर्ष और त्याग सम्पूर्ण कथा को प्रभावित करते हैं। महाभारत का स्त्री विमर्श अत्यंत व्यापक और बहुआयामी है। इसमें स्त्री को केवल करुणा और त्याग की मूर्ति के रूप में नहीं, बल्कि बुद्धिमत्ता, आत्मसम्मान, प्रतिरोध और नैतिक चेतना के प्रतीक के रूप में भी प्रस्तुत किया गया है। कुंती, गांधारी और द्रौपदी जैसी स्त्रियाँ भारतीय नारी के विभिन्न स्वरूपों को प्रकट करती हैं। महाभारत यह स्पष्ट करता है कि समाज की नैतिकता और संस्कृति का स्तर इस बात से निर्धारित होता है कि वहाँ स्त्रियों को कितना सम्मान और न्याय प्राप्त है। जहाँ स्त्री का अपमान होता है, वहाँ अंततः विनाश निश्चित हो जाता है। द्रौपदी चीरहरण का प्रसंग इसी सत्य का सबसे बड़ा उदाहरण है। भारतीय परंपरा में स्त्री के सम्मान को अत्यंत महत्त्व दिया गया है। मनुस्मृति में कहा गया है—

"यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफला: क्रियाः॥"

अर्थात् जहाँ स्त्रियों का सम्मान होता है, वहाँ देवता निवास करते हैं; और जहाँ उनका अनादर होता है, वहाँ सभी कार्य निष्फल हो जाते हैं। महाभारत की घटनाएँ इस सिद्धांत को अत्यंत प्रभावशाली ढंग से सिद्ध करती हैं।

9.1 कुंती : त्याग, धैर्य और मातृत्व की प्रतीक

कुंती महाभारत की सबसे धैर्यवान, त्यागमयी और सहनशील स्त्रियों में से एक हैं। उनका जीवन संघर्ष, त्याग और मातृत्व की महान गाथा है। वे केवल पाण्डवों की माता ही नहीं, बल्कि उनके नैतिक और आध्यात्मिक मार्गदर्शन की शक्ति भी थीं। कुंती का जीवन आरंभ से ही कठिनाइयों से भरा था। युवावस्था में ही उन्हें महर्षि दुर्वासा से एक दिव्य मंत्र प्राप्त हुआ, जिसके प्रभाव से उन्होंने सूर्यदेव का आह्वान किया और कर्ण का जन्म हुआ। समाज के भय और मर्यादा के कारण उन्हें अपने नवजात पुत्र को त्यागना पड़ा। यह घटना उनके जीवन की सबसे बड़ी पीड़ा बन गई। कुंती का चरित्र यह दर्शाता है कि स्त्री को अनेक बार सामाजिक व्यवस्था और परिस्थितियों के कारण अपने व्यक्तिगत सुखों का त्याग करना पड़ता है। उनका जीवन मातृत्व की करुणा और त्याग का महान उदाहरण है। पति पाण्डु की मृत्यु के बाद कुंती ने अत्यंत कठिन परिस्थितियों में अपने पुत्रों का पालन-पोषण किया। वनवास, षड्यंत्र, अपमान और संघर्ष के बीच भी उन्होंने धैर्य और आत्मबल नहीं खोया। वे सदैव अपने पुत्रों को धर्म, सत्य और संयम का मार्ग दिखाती रहीं। महाभारत में कुंती का यह कथन अत्यंत प्रसिद्ध है—"विपदः सन्तु नः शश्वत्तत्र तत्र जगद्गुरो।" अर्थात् हे प्रभु! हमारे जीवन में विपत्तियाँ आती रहें, क्योंकि विपत्ति में ही मनुष्य ईश्वर को स्मरण करता है। यह कथन कुंती के आध्यात्मिक दृष्टिकोण और धैर्य को प्रकट करता है। कुंती का जीवन यह सिखाता है

कि सच्ची शक्ति बाहरी वैभव में नहीं, बल्कि धैर्य, सहनशीलता और आत्मसंयम में होती है। वे भारतीय नारी के त्यागमयी और आदर्श मातृत्व का सर्वोच्च प्रतीक हैं।

9.2 गांधारी : पतिव्रता, आत्मसंयम और नैतिक पीड़ा की प्रतीक

गांधारी महाभारत की अत्यंत गंभीर, संयमी और तपस्विनी स्त्री पात्र हैं। उनका जीवन पतिव्रता धर्म, आत्मसंयम और नैतिक संघर्ष का अनूठा उदाहरण है। गांधारी का विवाह जन्मांध धृतराष्ट्र से हुआ था। पति के दुःख को अपना दुःख मानते हुए उन्होंने स्वयं अपनी आँखों पर पट्टी बाँध ली और जीवनभर अंधत्व का पालन किया। यह त्याग भारतीय संस्कृति में पतिव्रता धर्म का महान उदाहरण माना जाता है। उनका यह निर्णय केवल पति के प्रति समर्पण का प्रतीक नहीं, बल्कि आत्मसंयम और तपस्या का भी प्रतीक था। उन्होंने राजमहल में रहते हुए भी अत्यंत सादा और संयमित जीवन व्यतीत किया। गांधारी का जीवन यह दर्शाता है कि स्त्री केवल भावनात्मक शक्ति ही नहीं, बल्कि नैतिक और आध्यात्मिक शक्ति की भी प्रतीक है। वे धर्म और न्याय को समझती थीं तथा अनेक बार दुर्योधन को अधर्म के मार्ग से हटाने का प्रयास भी करती थीं।

उन्होंने अपने पुत्र को चेतावनी देते हुए कहा था— "यतो धर्मस्ततो जयः।" अर्थात् जहाँ धर्म है, वहीं विजय है। यह वाक्य महाभारत का केंद्रीय संदेश माना जाता है। गांधारी की सबसे बड़ी त्रासदी यह थी कि वे धर्म को समझती थीं, परंतु पुत्रमोह और परिस्थितियों के कारण अपने पुत्रों को अधर्म के मार्ग से रोक नहीं सकीं। युद्ध के बाद उनके सभी पुत्रों की मृत्यु ने उन्हें गहरे शोक में डुबो दिया। गांधारी का चरित्र यह प्रश्न भी उठाता है कि क्या अत्यधिक त्याग और मौन कभी-कभी अन्याय को बढ़ावा दे सकते हैं? यदि वे अपने पुत्रों के अधर्म के विरुद्ध अधिक कठोरता से खड़ी होतीं, तो शायद कुरुक्षेत्र युद्ध टल सकता था। उनका जीवन नारी की पीड़ा, सहनशीलता और नैतिक संघर्ष का अत्यंत मार्मिक उदाहरण है।

9.3 द्रौपदी : नारी अस्मिता और प्रतिरोध की प्रतीक

द्रौपदी महाभारत की सबसे प्रभावशाली और शक्तिशाली स्त्री पात्र हैं। वे भारतीय नारी अस्मिता, आत्मसम्मान, साहस और प्रतिरोध की सबसे सशक्त प्रतीक मानी जाती हैं। द्रौपदी का जन्म अग्निकुंड से हुआ था, इसलिए उन्हें "यज्ञसेनी" भी कहा जाता है। वे अत्यंत बुद्धिमान, तेजस्विनी और स्वाभिमानी थीं। उनका जीवन संघर्ष और अपमान से भरा था, परंतु उन्होंने कभी अन्याय के सामने झुकना स्वीकार नहीं किया। द्रौपदी चीरहरण का प्रसंग महाभारत की सबसे महत्वपूर्ण और मार्मिक घटना है। द्यूत-क्रीड़ा में युधिष्ठिर द्वारा उन्हें दांव पर हारने के बाद सभा में उनका अपमान किया गया। उस समय सभा में भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य और धृतराष्ट्र जैसे महान पुरुष उपस्थित थे, परंतु अधिकांश लोग मौन रहे। द्रौपदी ने सभा में प्रश्न किया— "किम् धर्मः?" अर्थात् धर्म क्या है? उनका यह प्रश्न केवल सभा से नहीं, बल्कि सम्पूर्ण समाज की नैतिक चेतना से था। द्रौपदी का अपमान महाभारत युद्ध का मुख्य कारण बना। यह घटना यह स्पष्ट करती है कि जब समाज में नारी सम्मान की रक्षा नहीं होती, तब विनाश निश्चित हो जाता है। द्रौपदी का चरित्र यह सिद्ध करता है कि नारी केवल करुणा और सहनशीलता की प्रतीक नहीं, बल्कि न्याय और प्रतिरोध की भी शक्ति है। उन्होंने अन्याय के विरुद्ध आवाज उठाई और धर्म का प्रश्न उपस्थित किया। महाभारत में श्रीकृष्ण द्वारा द्रौपदी की रक्षा का प्रसंग यह संदेश देता है कि धर्म और आत्मसम्मान की रक्षा के लिए दिव्य शक्ति सदैव उपस्थित रहती है। द्रौपदी का जीवन आधुनिक स्त्री विमर्श के लिए भी अत्यंत प्रासंगिक है। वे नारी स्वतंत्रता, आत्मसम्मान और न्याय की आवाज बनकर सामने आती हैं। उनका चरित्र यह सिखाता है कि अन्याय के विरुद्ध संघर्ष करना ही वास्तविक साहस है।

महाभारत का स्त्री विमर्श अत्यंत व्यापक और गहन है। कुंती त्याग और मातृत्व की, गांधारी पतिव्रता और आत्मसंयम की, तथा द्रौपदी नारी अस्मिता और प्रतिरोध की प्रतीक हैं। इन स्त्री पात्रों के माध्यम से महाभारत यह स्पष्ट करता है कि स्त्री समाज की केवल सहायक शक्ति नहीं, बल्कि उसकी नैतिक और सांस्कृतिक आधारशिला है। जहाँ स्त्री का सम्मान होता है, वहाँ धर्म

निष्कर्ष

महाभारत भारतीय सभ्यता और संस्कृति का ऐसा कालजयी ग्रंथ है, जिसने हजारों वर्षों से मानव समाज को नैतिकता, धर्म, न्याय और आत्मज्ञान का मार्ग दिखाया है। यह केवल युद्ध की कथा नहीं, बल्कि मानव जीवन के समस्त संघर्षों, द्वंद्वों और मूल्यों का व्यापक दार्शनिक विश्लेषण है। महाभारत का प्रत्येक प्रसंग जीवन की किसी न किसी गहरी सच्चाई को उद्घाटित करता है। यही कारण है कि यह ग्रंथ आज भी उतना ही प्रासंगिक है जितना प्राचीन काल में था। महाभारत का केंद्रीय संदेश धर्म की स्थापना और अधर्म के विनाश का है। कुरुक्षेत्र युद्ध केवल बाह्य युद्ध नहीं, बल्कि मनुष्य के भीतर चलने वाले सत्य और असत्य, विवेक और अहंकार, न्याय और अन्याय के संघर्ष का प्रतीक है। श्रीकृष्ण द्वारा अर्जुन को दिया गया गीता का उपदेश सम्पूर्ण मानवता के लिए जीवन-दर्शन का अमूल्य स्रोत बन गया। कर्मयोग, आत्मा की अमरता तथा समत्व का सिद्धांत आधुनिक तनावपूर्ण जीवन में भी मानसिक शांति और नैतिक संतुलन प्रदान करता है। महाभारत के पात्र केवल पौराणिक चरित्र नहीं, बल्कि मानव स्वभाव और समाज के विभिन्न आयामों के प्रतीक हैं। युधिष्ठिर सत्य और धर्म के, भीष्म त्याग और कर्तव्य के, कर्ण संघर्ष और आत्मसम्मान के, तथा द्रौपदी नारी अस्मिता और प्रतिरोध के प्रतीक हैं। इन पात्रों के माध्यम से महाभारत मानव जीवन की जटिलताओं और नैतिक संकटों का गहन चित्रण प्रस्तुत करता है। महाभारत में राजनीति, प्रशासन और राज्यशास्त्र का भी अत्यंत विकसित स्वरूप दिखाई देता है। विदुर नीति और राजधर्म आज भी आदर्श शासन, नेतृत्व और नैतिक प्रशासन के लिए प्रेरणा प्रदान करते हैं। इसी प्रकार गुरु-शिष्य परंपरा तथा एकलव्य प्रसंग शिक्षा, सामाजिक न्याय और समान अवसर की आवश्यकता को रेखांकित करते हैं। महाभारत का स्त्री विमर्श भी अत्यंत महत्वपूर्ण है। कुंती, गांधारी और द्रौपदी जैसी स्त्रियाँ भारतीय नारी शक्ति, त्याग, आत्मसंयम और संघर्ष की प्रतीक हैं। विशेष रूप से द्रौपदी का चरित्र यह स्पष्ट करता है कि समाज में स्त्री सम्मान की रक्षा न होने पर विनाश अवश्यंभावी हो जाता है। अतः महाभारत वास्तव में ज्ञान का समुज्ज्वल रत्न है। यह केवल भारतीय संस्कृति की धरोहर नहीं, बल्कि सम्पूर्ण मानवता के लिए नैतिक और आध्यात्मिक प्रकाश स्तंभ है। इसकी शिक्षाएँ सत्य, न्याय, करुणा, आत्मसंयम और मानवता की स्थापना का मार्ग दिखाती हैं। आज के वैश्विक और नैतिक संकटों से भरे युग में महाभारत की शिक्षाएँ और भी अधिक प्रासंगिक प्रतीत होती हैं। यह महाग्रंथ सदैव मानव समाज को धर्म, विवेक और आत्मज्ञान की दिशा में प्रेरित करता रहेगा।

संदर्भ सूची

1. अग्रवाल, वासुदेव शरण। (2001). *भारतीय संस्कृति और महाभारत.* वाराणसी: चौखम्बा विद्याभवन।
2. अवस्थी, ए. पी. (2015). महाभारत में धर्म और राजनीति का स्वरूप। *भारतीय दर्शन समीक्षा, 12*(2), 45–58।
3. उपाध्याय, बलदेव। (2008). *भारतीय दर्शन.* वाराणसी: शारदा मंदिर प्रकाशन।
4. उपाध्याय, रामजी। (2012). *महाभारत का सांस्कृतिक अध्ययन.* नई दिल्ली: साहित्य अकादमी।
5. ओझा, शिवकुमार। (2017). गीता का कर्मयोग और आधुनिक जीवन। *दार्शनिक अनुशीलन, 9*(1), 77–89।
6. काणे, पांडुरंग वामन। (1998). *धर्मशास्त्र का इतिहास* (खंड 2). दिल्ली: मोतीलाल बनारसीदास।
7. कुमार, धर्मेन्द्र। (2019). महाभारत में नारी विमर्श। *समाज और संस्कृति, 6*(3), 101–118।
8. गुप्ता, चन्द्रशेखर। (2016). विदुर नीति और सुशासन। *भारतीय लोक प्रशासन पत्रिका, 18*(1), 55–70।
9. चतुर्वेदी, गिरिधर शर्मा। (2005). *महाभारत मीमांसा.* जयपुर: राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी।
10. चौबे, शिवप्रसाद। (2018). महाभारत में शिक्षा व्यवस्था। *शोध प्रभा, 14*(2), 91–104।
11. झा, डी. एन. (अनुवादक). (2010). *प्राचीन भारत का इतिहास.* नई दिल्ली: ग्रंथशिल्पी।
12. त्रिपाठी, कृष्णमणि। (2013). महाभारत और भारतीय राजनीति। *इतिहास दर्पण, 7*(2), 66–81।
13. त्रिपाठी, रामनरेश। (2007). *भारतीय संस्कृति के आधार.* इलाहाबाद: लोकभारती प्रकाशन।
14. द्विवेदी, हजारीप्रसाद। (2003). *भारतीय संस्कृति की रूपरेखा.* नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन।
15. द्विवेदी, कपिलदेव। (2011). *गीता का दार्शनिक विवेचन.* वाराणसी: विश्वविद्यालय प्रकाशन।
16. नगेंद्र। (2009). *भारतीय साहित्य का इतिहास.* नई दिल्ली: मयूर पेपरबैक्स।
17. पाठक, रामलखन। (2014). द्रौपदी : नारी अस्मिता का प्रतीक। *महिला अध्ययन पत्रिका, 5*(1), 44–60।
18. पाण्डेय, राजबली। (1997). *हिन्दू संस्कार.* वाराणसी: चौखम्बा संस्कृत संस्थान।
19. पाण्डेय, गोविन्दचन्द्र। (2001). *भारतीय परंपरा के मूल स्वर.* नई दिल्ली: राष्ट्रीय पुस्तक न्यास।

20. पाठक, सूर्यनारायण। (2016). महाभारत का नैतिक दर्शन। *भारतीय चिंतन, 11*(3), 29–47।
21. प्रसाद, राजेन्द्र। (2018). कुरुक्षेत्र युद्ध का दार्शनिक अर्थ। *दर्शन समीक्षा, 10*(4), 88–99।
22. मिश्र, उमेश। (2004). *भारतीय दर्शन*. प्रयागराज: हिन्दी समिति।
23. मिश्र, विद्यानिवास। (2010). *भारतीयता की पहचान*. नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन।
24. मिश्रा, सत्यकेतु। (2015). महाभारत में गुरु-शिष्य परंपरा। *शिक्षा विमर्श, 8*(2), 52–69।
25. मुकर्जी, राधाकुमुद। (2002). *प्राचीन भारतीय संस्कृति*. दिल्ली: राजपाल एंड संस।
26. यादव, श्यामसुन्दर। (2017). महाभारत और सामाजिक न्याय। *समाज विज्ञान वार्ता, 4*(1), 70–86।
27. राधाकृष्णन, सर्वपल्ली। (1996). *भारतीय दर्शन* (खंड 1). नई दिल्ली: राजपाल एंड संस।
28. राय, रामधारी सिंह 'दिनकर'। (1972). *संस्कृति के चार अध्याय*. नई दिल्ली: लोकभारती।
29. शर्मा, रामशरण। (2003). *प्राचीन भारत का सामाजिक और आर्थिक इतिहास*. नई दिल्ली: ओरिएंट ब्लैकस्वान।
30. शर्मा, चन्द्रधर। (2008). *भारतीय दर्शन : आलोचन और अनुशीलन*. दिल्ली: मोतीलाल बनारसीदास।
31. शर्मा, अर्चना। (2019). गांधारी का नैतिक व्यक्तित्व। *नारी चेतना, 3*(2), 83–95।
32. शास्त्री, हरिदत्त। (2011). *महाभारत का धर्मदर्शन*. वाराणसी: संस्कृत संस्थान।
33. सिंह, नागेन्द्र। (2016). गीता का समत्व सिद्धांत। *दार्शनिक संवाद, 15*(2), 100–114।
34. सिंह, बी. एन. (2014). महाभारत में राजधर्म की अवधारणा। *राजनीति विज्ञान शोध पत्रिका, 9*(1), 37–53।
35. सिंह, प्रभुदयाल। (2018). एकलव्य प्रसंग और शिक्षा का अधिकार। *भारतीय शिक्षा समीक्षा, 12*(3), 58–74।
36. सहाय, शिवबालक। (2009). *महाभारत और भारतीय जीवन मूल्य*. पटना: भारती भवन।
37. सक्सेना, विमला। (2017). कुंती का मातृत्व और त्याग। *महिला विमर्श, 6*(1), 27–42।
38. सिन्हा, जगदीशचन्द्र। (2013). *भारतीय दर्शन की कहानी*. दिल्ली: साहित्य भवन।
39. त्रिवेदी, रामगोविन्द। (2015). भीष्म का कर्तव्य और धर्मसंकट। *संस्कृति अध्ययन पत्रिका, 7*(2), 90–108।
40. वर्मा, धीरेन्द्र। (2006). *हिन्दी साहित्य कोश*. प्रयागराज: ज्ञानमंडल प्रकाशन।
41. व्यास, रामकुमार। (2012). महाभारत में धर्म और मानवता। *भारतीय संस्कृति शोध पत्रिका, 13*(4), 120–138।